बंटता
हुआ
आदमी

निरुपमा सेवती

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड सन्स प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३
चौड़ा रास्ता, जयपुर

मूल्य : १५.००
स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड सन्स प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : १९७७ / सर्वाधिकारी : निरुपमा सेवती / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर दिल्ली ११००५३ में मुद्रित ।

Bantata Hua Aadmi (Novel) : Nirupama Sewti

आरब्ध

बहती जिंदगी के सैलाब में अपना असलीपन भी न टिके तो ! इसी चिरंतन संवेग की पीड़ा पूरे प्रहार सहित व्यक्ति को आंदोलित करती है—चाहे वह छोटे से शहर का बड़ी आकांक्षाओं वाला व्यक्ति हो चाहे महानगर की भीड़ के बीच नगराय-सा कोई।—इस पीड़ा को 'बंटता हुआ आदमी' के पात्रों में बेशक अलग-अलग जिया लेकिन किसी एक बिंदु पर यह पूरी समग्रता से जुड़ आयी।

मुझे निरंतर यह बात बड़ी पीड़ा देती रही है कि फिल्मों के निर्माण में योगदान देनेवाले श्रमजीवी यानी टेक्नीशियनज़ अपनी यूनियनों के बावजूद एक बड़े शोषण तले पिसते रहे हैं, पिस रहे हैं। —श्रमजीवियों को पूरे अधिकार दिलाने वाली आधुनिक विश्व-दृष्टि के बीच भी परिश्रम के अनुपात में अतिरिक्त लाभ का ऐसा अन्यायी वितरण ! असमानता की इतनी बड़ी खाई !—तो आज जबकि फिल्म का माध्यम पूरी भयंकरता से हर पीढ़ी पर सवार है। तब उसे निर्मित करने वालों की सही हालत ढंकी क्यों है ! या कि ग्लैमर की चमक शोषणजनित उस अंधेरे तक दृष्टि उठने ही नहीं देती ? तब इस परिवेश की पृष्ठ-भूमि सर्वथा उपयुक्त भी बन आयी, सब जगह टकराने वाली भ्रष्ट मानसिकताओं से स्पष्ट साक्षात्कार कराने के लिए।

भ्रम में पड़ा वह मानवीय-चरित्र जो कदम-कदम पर असलीपन में कीलें ठोकता है और इंसान को मशीन-मात्र बना देता है। आज आप, हम और सभी तो देखते हैं कि स्थितियों और मन:स्थितियों का टकराव व्यक्ति को तोड़-तोड़ किस तरह कई हिस्सों में बांटता है।—और

साधारण आदमी की विवशताएं फड़फड़ाती रहती हैं। अपनी ही उंचाइयों को नापने का, अपनी गहराइयों में उतरने का साहस खो गया है। साहस जो इंसान की असली नैतिकता है। जभी शायद अनिता जैसा पात्र अजाने ही एक प्रतीक चरित्र बन आया। और स्थितियां जीवन के अन-देखे रूप की तरह अपनी सहज गति पर प्रकटित होती गयीं। न सुनायक न अनायक। न नाटकीय बौद्धिकता, न अनाटकीय भावहीनता। बस, किसी शुरुआत की तड़प।

—निरुपमा सेवती

पानी खूब बरस चुका था रात-भर। और सुबह धूप निकली हुई थी जैसे बारिश हुई ही न हो। वह देर से उठा था जबकि धूप आंखों में मिचमिचाने लगी थी—और फिर जल्दी-जल्दी तैयार हो समय पर पहुंच जाने की कोशिश की थी।

इन दिनों मंजु की घर में गैरमौजूदगी ने मानो घर ही क्या दिमाग भी अस्तव्यस्त कर दिया है। समय से काम पर नहीं पहुंच सकता, समय से खाना नहीं खाता और कई बार तो यूं लगता है कि समय पर सही बात भी सोचनी मुश्किल हो जाती है। इसलिए आज उसने खूब तय कर लिया था कि जो भी हो वह सही तरीके से सारे काम करेगा।

लेकिन शुरुआत ही गलत हो गयी तभी तो एक भी नहीं बजा और भूख लगने लगी। सुबह ब्रेकफास्ट जो गोल कर गया था। सूने घर से चिढ़ उठी थी और चाय तक भी खुद नहीं बनायी। बाहर चाय पी लेकिन कुछ खाने को तबीयत ही नहीं हुई। और फिर दस बजे से यहां ...ल बुक थी। कुछ यह भी जल्दी थी कि कहीं देर न हो जाये...पर अभी हाथ का काम खत्म किये बिना उठ नहीं सकता था। चाहता तो

कुछ यहीं मंगा लेता—पर उसे जैसे इसकी भी दिमागी फुर्सत न हो और दूसरे ही क्षण मानो सचमुच भूख एकदम गायब ही हो गयी थी अपने दूसरे विचारों में डूबते हुए।

मैग्निफाइंग-ग्लास पर आंख गड़ाये शीशे के पार रीलों के फ्रेम टटोलते हुए उसकी आंखें पत्थर होने लगी थीं—पर दिमाग में हर तरह के विचारों का परनाला-सा बहे जा रहा था। जिससे कहीं केंद्रित हो पाना भी मुश्किल हो जाता है। इस परनाले में मुसीबतों को पछाड़ फेंकने के लिए ना पूरी होने वाली योजनाएं भी गुड़मुड़ाती हुई बहती ही रहती हैं। पिछले सारे वर्षों की दौड़···अनिश्चितता भी और अभाव भी, इस तरह दोहरी तकलीफ हो जाती है और इन सारे ज़लील कर देने वाले अभावों में घिरा घर···

घर यानी मंजु—जिसके लिए ज़िंदगी सिर्फ़ कहकहा ही होनी चाहिए और कुछ नहीं, हो सकती भी नहीं। एक बच्ची की मां होकर भी खुद किसी बच्ची की तरह ही 'लाइट मूड' में ही जिसका रूठना-मनना चलता रहता है। जो किसी संघर्षमय स्तर के जीवन को झटक देना चाहती है।···वह ऐसी है तो वह भी उसे ऐसी ही बनाये रखना चाहता है। सारी दौड़ की धूल में एक ही तो शीतल ज़मीन है—घर! जहां रिंकी है, मंजु है··· ओह, पर अब मंजु का उस घर में ही ना होना ···मेज़ पर रखे साउंड नेगेटिव और पिक्चर-नेगेटिव के सिंक्रोनाइज़िंग मीटर से भी तेज़ दौड़ है दिमाग के इस बहाव की।

खटाक्-खट्···एन० जी० शॉट बीच में से निकाल रद्दी में फेंक दिया। उस रील के दो टुकड़े हो गये। बड़ी देर से एक ही स्थिति में रखे पैर जम-से गये थे। उसने पैरों को ज़रा फैला दिया—और गहरी सांस लेते हुए सोचा था कि परिस्थितियों के एन० जी० शॉट्स सड़ते भी रहें पर उन्हें इतनी आसानी से नहीं फेंका जा सकता···टुकड़े ऐसे ही हो जायेंगे पर जुड़ेंगे कैसे?

उसने रूमाल निकाल माथे का पसीना पोंछा—कैसे कंजूस हैं ये लोग! एअरकंडीशंड कमरा क्यों नहीं बुक करवाते। प्रोडक्शन इंचार्ज अपने इस सुरेश भाई को भी चाहिए न कि ध्यान रखे संगी-साथियों के

आराम का। कोई विलकुल नयी कंपनी नहीं है कि उन कमरों पर एकाधिकार किये रहने वालों में शामिल ना हो सके। पर उनका भी क्या कसूर। अपने उस बॉस दीनू साहव को भी तो अपने असिस्टेंट का खयाल रखना चाहिए।

यूं दिखायेंगे जैसे प्रोड्यूसर के वहुत वड़े ख़ैरख्वाह हों। ताकि हमेशा के लिए यहां चांस मिला रहे। पर ठीक भी है और करें भी क्या। ज्यादा वोलें तो किट-किट करने वाले झंझटवाज़ समझ लिये जायेंगे। 'चुप-घुन्ने वने रहना', इस मूलमंत्र को क्या वह भी नहीं समझ गया—सात-आठ सालों में।—और फिर यह वॉस तो ताज़ा-ताज़ा चीफ़ एडीटर वना है। पांच-छह फिल्में ही की हैं अव तक। खूव चौकन्ना वना रहता है अपनी खास इमेज वनाये रखने के लिए।

हां, सभी अपनी-अपनी इमेज वनाये रखना चाहते हैं···वह स्वयं भी तो अपना परिश्रमी रूप सवकी नज़रों में स्थापित कर देने के लिए ही तो इस फ़ाइनल एडीटिंग में दिन-रात एक किये दे रहा है। दीनू साहव पर दूसरी जगह का काम भी आ पड़ा है तो किसी-किसी दिन अकेला ही वह यहां का काम सम्हालता रहता है। आज शिफ्ट दो वजे तक की है। तव तक यहां से हिलेगा नहीं—स्वयं को मेहनती जता देने से ही तो भविष्य वनेगा। उसने वहीं एक कप चाय मंगा ली और तभी पावटे सिर पर आ खड़ा हुआ था।

"क्यों गुप्ता, कितनी रीलों की नेगेटिव सॉर्टिंग हुई?"

पावटे खड़ा था—हमेशा की तरह मोटी-मोटी आंखों से उसे भांपते हुए।

दीनू साहव इसी लैव में जिस दूसरी फिल्म के गीत की सिंक्रोनाइज़ेशन में जुटे थे—पावटे भी वहीं था।

"क्यों, उधर का काम खत्म हुआ?" उसने भी प्रश्न ही किया।

"अभी कहां खत्म! जानते तो हो, गाने के लिए मूवमेंट के साथ साउंड मैच करना सबसे मुश्किल काम है। रात तक चलेगा।"

उस फिल्म में वह दीनू साहव के साथ नहीं था। क्योंकि वह पहले आरंभ हुई थी। तब तक उसने दीनू के साथ ज्वॉइन नहीं किया था।

पावटे से एक चिढ़ यह भी है कि यह सेकंड असिस्टेंट है पर फिर भी इस ढंग से वात करता है, मानो यह इतना होशियार है कि सारे काम इसी के सुपुर्द रहते हैं। अव जव उधर लगा था दीनू साहव के साथ तो इधर भी क्यों आ टपका !—और हालत यह है इसकी कि चार साल से इस काम में होते हुए भी विलकुल ढंग की कटिंग और जोड़ना-जाड़ना भी नहीं आया।

पर सुन लिया है न कि गुप्ता का हाथ और दिमाग वहुत अच्छा है इसलिए उसे ही भांपता रहता है। जैसे उसके काम के अंदाज़ का फोटोग्राफ़ अपनी मोटी-मोटी आंखों में ही उतार लेना चाहता है।

और इस समय भी पावटे की होशियार आंखें हाथों के ज़र्रे-ज़र्रे पर रेंगती हुई महसूस करते हुए भी वह चुपचाप अपने काम में जुटा रहा।

"लंच खाया ?" पावटे की आवाज़ फिर सिर पर सवार थी।

"कहां, अव तो काम खत्म होने के वाद ही खाऊंगा।"

फिर वह चुपचाप कटे हुए फ्रेम्स के सिरों को जोड़ने के लिए फिल्म-सीमेंट का घोल उन पर चढ़ाता रहा—और उसे यूं विलकुल चुप देख पावटे वहां से चला गया था।

अगली शिफ्ट के लिए एडीटर वर्मा ने टेवल वुक किया हुआ था। वह पौने दो वजे ही आ गया और पीठ पर धौल जमाते हुए वोला, "कहो शरद गुप्ता, क्या हाल हैं ? सुना है कि धांसू पिक्चर वनी है तुम्हारी।"

"अच्छा, तो खवर काफ़ी पहले फैल गयी ?"

"पहले ही फैले, वात भी तो तभी वनती है। वरना डिस्ट्रीव्यूटरों को प्रिंट भेजने से पहले दाम कैसे वढ़वाये जायें।" वर्मा ने अपनी ही वात को खूव हंस कर एंजॉय किया। फिर एकाएक वोला था, "अच्छा, यह तो वताओ, अपने साहव को छोड़ रहे हो क्या ?"

वह इस अचानक वात से एकदम घवरा गया, वोला, "लगता है मेरी खवर मुझी को पता नहीं।"

"नहीं, शायद मुझे ही गलतफहमी हो गयी होगी। क्योंकि दीनू ने

खुद मुझसे कहा था कि कोई अच्छा-सा असिस्टेंट हो तो बताओ।"

फिर वर्मा एकदम से कुछ याद करता हुआ बोला, "शायद, उनका वह दोस्त है न, एडवरटाईज़िंग फर्मवाला—वहीं किसी को एडीटर रखवाना होगा। तुम्हीं चले जाओ, इंडिपेंडेंट चांस तो मिलेगा।"

"क्या करना ऐसे चांस का ! क्या पता कल को वहां काम ठप्प हो जायें और फिर से इंडस्ट्री में आओ तो जगह कहां मिलेगी ?"

"हां, यह तो है। सब जगह पहले से ही भरी हुई रहती हैं। काम मिलना मुश्किल ही हो जाता है।"

"हां, यही तो।" वह मुश्किल से इतना ही कह पाया। लगातार काम में सिर झुकाये, आंखों की स्थिरता रीलों पर टिकाये थक गया था। पीठ भी अकड़-सी गयी थी। वह जम्हाई लेते हुए उठा तो जैसे शरीर भी सुन्न हुआ जा रहा है। बाद में वर्मा ने भले ही एडवरटाइज़िंग फर्म की बात कह दी है पर उसे तो खटका हो गया न कि आखिर दीनू साहब असिस्टेंट की खोज क्यों कर रहे हैं !

"हां भाई, इसी जगह जमे रहो। नसीब में होगा तो अपने-आप अच्छा इंडिपेंडेंट चांस भी मिल जायेगा।"—वर्मा की यह बात सुनते हुए वह वहां से बाहर आया था। ये नसीब-नसीब की बातें चिल्लाने वाले पेटेंट वाक्य ! मन होता है गला फाड़कर कहे कि मेरा नसीब तो बहुत अच्छा है। क्योंकि मेरा नसीब मेरा काम है। क्या-क्या क्विक-कटिंग दिमाग में आती है। एक बार चांस मिल जाये तो बता दूं कि क्या होती है एडीटिंग। हां, मेरा नसीब तो मेरा काम है···

पर अब करना क्या है ?—इसी वक्त दीनू साहब से साफ़-साफ़ पूछे तो अच्छे-भले भी बिगड़ जायें कि तुम सबकी ग्रंगड़-खंगड़ बातों पर विश्वास कर लेते हो ?—और इस तरह वह अपना प्रभाव खुद ही भंग कर देगा···वह कहेंगे कि तुमने इसे सच मान लिया ! इसका मतलब तुम अपने को इसी लायक समझते हो न कि मैं तुम्हें हटा दूंगा !—नहीं, बात साफ़ नहीं की जा सकती। तरीके से ही जाननी होगी। थोड़ी फुरसत में।

गलियारा पार करते हुए वह किसी सी-सॉ पर ही झूल रहा था।

हो भी सकता है—और नहीं भी ! आखिर क्या होगा दीनू साहव के दिमाग में !—आसपास जंग खायी अलमारियां और जहां-तहां पड़े जंग खाये डिब्बे फिल्मों के···परेशानियां उसे भी तो जंग की तरह ही खा रही हैं। पर उसे पता नहीं चला कि जंग कैसे अपनी खुरदराहट उस पर विछाता रहा।

तो क्या पावटे की तरह वह भी उनके घर की भाजी तक भी ला दिया करे। यह कर पायेगा वह ? पहले भी तो ऐसी वातों पर गुस्से से भभक उठता था और कई नौकरियां गयीं। पांवों पर सिर झुकाये वैठे रहने वाली कई सलाहें एकदम फ्लेट हो गयीं। वह यही सोचता रहा—'वह कभी नहीं गिरेगा। वे लोग गिर सकते हैं जिनके पास संस्कार नहीं। कोई ठोस विचारधारा नहीं एक भले घर का प्रगतिशील विचारों वाला ग्रेजुएट भला कैसे गिर सकता है !'

वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा—नहीं, दीनू साहव इस तरह उसे पटक नहीं सकते। पिछले दिनों कितनी दमतोड़ मेहनत की है उसने। वहुत-सा काम अकेले ही निवटाया है। इसीलिए न कि वह आगे भी साथ ही रखें उसे।

पर ज्यादा सोचने से क्या फायदा ! दीनू साहव यहां रोज मिलते रहेंगे। चार-पांच दिन में कभी भी वात साफ़ हो जायेगी।

वाहर निकलते ही वारिश की वूंदों की रफ्तार वढ़ चली थी।··· ओह ! वह छाता लाना ही भूल गया। कैसे भूल गया। पहले ऐसे मौसम में मंजु ही छाता ले जाने की याद दिला देती थी।

पानी खूव वरसने लगा। लोग इधर-उधर किसी छत की शरण लेने के लिए दौड़ने-से लगे थे। वह भी भागता-सा फिर विल्डिंग में ही लौट आया।

•
•

वह पोर्च की छत के नीचे खड़ा वारिश रुकने का इंतज़ार कर रहा था और अचानक वारिश शुरू हो जाने से कई लोगों का जमघटा वहां लग गया था। साथ वाले प्रोजेक्शन-थियेटर में अभी-अभी किसी फ़िल्म

हो भी सकता है—और नहीं भी ! आखिर क्या होगा दीनू साहब के दिमाग में !—आसपास जंग खायी अलमारियां और जहां-तहां पड़े जंग खाये डिब्बे फिल्मों के···परेशानियां उसे भी तो जंग की तरह ही खा रही हैं। पर उसे पता नहीं चला कि जंग कैसे अपनी खुरदराहट उस पर बिछाता रहा।

तो क्या पावटे की तरह वह भी उनके घर की भाजी तक भी ला दिया करे। यह कर पायेगा वह ? पहले भी तो ऐसी बातों पर गुस्से से भभक उठता था और कई नौकरियां गयीं। पांवों पर सिर झुकाये बैठे रहने वाली कई सलाहें एकदम फ्लेट हो गयीं। वह यही सोचता रहा—'वह कभी नहीं गिरेगा। वे लोग गिर सकते हैं जिनके पास संस्कार नहीं। कोई ठोस विचारधारा नहीं एक भले घर का प्रगतिशील विचारों वाला ग्रेजुएट भला कैसे गिर सकता है !'

वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा—नहीं, दीनू साहब इस तरह उसे पटक नहीं सकते। पिछले दिनों कितनी दमतोड़ मेहनत की है उसने। बहुत-सा काम अकेले ही निबटाया है। इसीलिए न कि वह आगे भी साथ ही रखें उसे।

पर ज्यादा सोचने से क्या फायदा ! दीनू साहब यहां रोज मिलते रहेंगे। चार-पांच दिन में कभी भी बात साफ़ हो जायेगी।

बाहर निकलते ही बारिश की बूंदों की रफ्तार बढ़ चली थी।···ओह ! वह छाता लाना ही भूल गया। कैसे भूल गया। पहले ऐसे मौसम में मंजु ही छाता ले जाने की याद दिला देती थी।

पानी खूब बरसने लगा। लोग इधर-उधर किसी छत की शरण लेने के लिए दौड़ने-से लगे थे। वह भी भागता-सा फिर बिल्डिंग में ही लौट आया।

•

वह पोर्च की छत के नीचे खड़ा बारिश रुकने का इंतज़ार कर रहा था और अचानक बारिश शुरू हो जाने से कई लोगों का जमघटा वहां लग गया था। साथ वाले प्रोजेक्शन-थियेटर में अभी-अभी किसी फ़िल्म

"कौन लोग हैं ये ?"

सुनंदा ने नाम बताया।—तो यह उस प्रसिद्ध प्रोड्यूसर-डायरेक्टर की पिक्चर के लिए साइन हो रही है। तब तो कल देखते ही देखते यह इंपाला में बैठी इस बिल्डिंग में दाखिल हो रही होगी और वह फाटक से निकलेगा तो लंबी कार के धूल-धड़ाके से बचने के लिए एक ओर सिमट जाना होगा।

उसने ज़रा औपचारिकता से ही सुनंदा को कांग्रेच्यूलेट किया और फिर जैसे बारिश की स्पीड आंकने के ढंग से झरती बूंदों को ताकने लगा।

"डैडी आ नहीं सके। बीमार हैं।" पाया कि इस बीच सुनंदा कुछ मुखरा-सी भी हो आयी है। पहले बंधी-बंधायी बातें करती थी; प्रश्न पूछो तो उसके उत्तर दे। लेकिन अब खुद ही बातें किये चली जा रही है।

"क्या हुआ आपके डैडी को ?"

"बस, छाती में कुछ कंजेस्शन है। एक-डेढ़ हफ्ता और लगेगा ठीक होने में। तो बस अकेले ही आना पड़ा।"

उसने पहली बार महसूस किया कि सुनंदा की सारी तेज़ी-शोखी के पीछे एक घबराहट-सी भी है। शायद अपने भविष्य के लिए। वह यूंही बार-बार अपने बालों की लटों को कान के पीछे कर लेती है। जल्दी-जल्दी बड़ी-बड़ी आंखों की पुतलियां इधर से उधर घुमा चारों ओर देख लेती है। शायद उससे बात करने भी खुद ही इसलिए चली आयी कि एकदम अकेली-सी खड़ी थी। अगर दो-चार लोगों से घिरी होती तो क्या पता दूर वाली 'हैलो' से ही टरका देती।

उसने एक सिगरेट सुलगाते हुए कनखियों से सुनंदा की ओर देखा—वैसी ही दुबली-पतली है अब तक। वह चुप खड़ी थी तो वह भी चुपचाप दूसरी ओर देखने लगा और चाहने लगा कि कुछ धीमी हुई बारिश जल्दी ही खत्म हो जाये।

"आप टैक्सी में जायेंगे ?" अचानक सुनंदा ने पूछा तो वह तेजी से कह गया—

"नहीं जी, महीने की तनख्वाह दस दिन में उड़ चुकी है। यहां बस के ही मुरीद हैं।"

कहते ही ताज्जुब भी हुआ कि वह इतनी साफ़ बात कैसे कह गया। शायद यह सारी स्थितियों के प्रति भयंकर चिढ़ के कारण ही हुआ।

सुनंदा साड़ी के पल्ले का किनारा उंगली पर लपेटती और खोलती रही। जैसे किसी उलझन में हो—'वह प्रोड्यूसर साहब हैं न, ऊपर किसी काम से गये हैं···मैं नहीं जानती, जाने ऊपर कहां होंगे। प्लीज़, आप पता कर देंगे। फिर मैं जाकर पूछ लूंगी कि मुझे वह साथ ले जा सकेंगे? अब देखिए न, इतनी बारिश हो रही है। डैडी भी साथ नहीं···'

एकसाथ लंबी बात कहते-कहते उसके गालों का चमकीला-सांवला रंग आरक्त-सा हो आया था।

पर वह पहले ही थका-थका है—'और यह काम ऐसे बता रही है जैसे मैं इसका सेक्रेटरी हूं।'

वह बात टालता इससे पहले ही सुनंदा सकपका आयी थी—"अरे वे तो···" सुनंदा के स्वर अस्पष्ट-से थे, जिन्हें वह एकदम नहीं समझ पाया। पर वह जिधर देख रही थी उधर देखा तो पाया कि वे कुछ लोग तेज़ी से सीढ़ियों वाली जगह से बाहर हुए हैं। एक मर्सेडीज़ आकर रुकी है और देखते ही देखते वे उसमें बैठ गये हैं—और झपाटे से मर्सेडीज़ सड़क की ओर बढ़ गयी है। एक फाइनेंसरनुमा लाला था और उसकी भारी-भरकम पत्नी—और साथ में वही नामी प्रोड्यूसर-डायरेक्टर।

दूसरे पल ही बात समझ में आ गयी। यह सुनंदा अभी इनकी हीरोइन नहीं बनी है। सिर्फ़ 'हां' भर कही होगी। तभी तो इसे लिफ्ट देने की बात पूछी तक नहीं गयी।

अब सुनंदा के चेहरे पर असमंजस वाले अपमान की कालिमा घिरी हुई थी—'डायरेक्टर साहब तो चले गये···शायद उन्होंने सोचा होगा मैं चली गयी हूं।' अपनी स्थिति बचाने की कोशिश करते हुए वह मौसम की भी बेरहमी को बेचारगी से टुकुर-टुकुर देखने लगी। उसके दिल में भी एक बियाबानी-सी बिखर गयी या यह सुनंदा की दुबली-पतली

आकृति पर घुमड़ी उदासियों का ही कोई बिंब है—उसने उधर से नज़र घुमा ली।

बारिश थम रही थी। कुछ लोगों ने टैक्सियां मंगवा ली थीं। कुछ लोग छतरियां खोल हल्की बारिश में चल दिये।

और थोड़ी देर बाद वह बोला था, "आइए, अब तो कुछ बूंदाबांदी ही है। बस-स्टॉप पर तो पहुंचें।"

"हां, चलिए।"—और वे बाहर निकल बायीं ओर मुड़ आये थे।

दुकानों के आगे बहुत संकरे फुटपाथ पर चलते-चलते हल्की फुहार से बचने के लिए सुनंदा ने आंचल से सिर ढांप लिया था।

"कितना सताया बारिश ने भी और अब देखिए, वहां दूर तो धूप भी चमक रही है।"

उसने भी दूर देखा और अनगिनत जूतों की उतरी मिट्टी के-से गीले-गीले कीचड़ से सना फुटपाथ, आसपास दौड़ती बसों, मोटरों की भीड़ और इस सब के बीच यह धूप बारिश वाला मौसम बहुत डिजेक्शन महसूस करवाने वाला लगा। वह एक नामालूम तनाव में कैद-सा तेज़-तेज़ चलने लगा।

सुनंदा भी उतना तेज़ चलने की कोशिश में ही तेज़ी से अपने छोटे-छोटे पांव उठा रही थी। उसकी चाल में एक लहक थी और कमर में नाज़ुक-सा लोच था। 'ओह मंजु, तुम कब आओगी। बड़ा बोर किया है तुमने।'—और वह सोचने लगा कि जो लोग पत्नियों के साथ सोने के आदी हो जाते हैं वे आखिर क्या करें?—पत्नी के न मिलने पर दूसरी लड़कियों से दोस्तियां बनायें! पर सिर्फ़ दोस्ती के लिए दोस्ती—इसे भली लड़कियां कहां मानती हैं आसानी से। तो क्या वही—वही एमोशंज का खेल रचकर! पर खूब जानता है कि झूठे डायलॉग भी बोलेगा तो भी खुद ही एक दिन डायलॉग से जन्मी अपनी ही भावनाओं में घिर जायेगा। यह चक्कर उसे ही भारी पड़ेगा।

पर संगी-साथी यही कहते हैं कि ऐसी, सुनंदा जैसी लड़कियों को बातों में ले आना कोई मुश्किल नहीं। इन्हें काम दिलाने का लालच दे दो। बस, फिर खुद ही करीब आने की योजनाएं बनाने लगेंगी। पर

उसने ये आज़मूदा नुस्खे अब तक नहीं आज़माये—'छिः, लड़कियों को धोखा देना'—और उसे धोखा देकर मिली चीज़ों में दिलचस्पी ही नहीं होती, वह क्या करे! और अगर सुनंदा वैसी ही आसान है या चीप है तो भी वह इसे नहीं पाना चाहेगा। फिर उसे अपने सोचने के ढंग पर स्वयं ही हंसी भी आ गयी—जब वह इस लड़की के प्रति कोई खास खिंचाव पाता ही नहीं है फिर ये सब सोच ही क्यों रहा है!

पुराने मकानों के निचले हिस्सों में बनी दुकानों की लंबी कतार खत्म होने के बाद तक वे दोनों उस नुक्कड़ पर आ पहुंचे थे जहां से सड़क चौड़ी हो चली थी।

"अब तो बारिश बिलकुल ही खत्म।" सुनंदा साड़ी का आंचल सिर से उतार लापरवाही से कंधे पर फेंकते हुए बोली थी, "ठीक ही कहते हैं न, बंबई की बरसात और प्रोड्यूसर की बात का भरोसा नहीं! है न?"

उसे एकबारगी लगा कि सुनंदा ख़ामख़ाह बातूनी बनने की कोशिश कर रही है। इतनी घिसी-पिटी बात सुनना भी बेहद बोरिंग लगा। उकताते हुए ही जवाब दिया, "एक तीसरी बात भूल गयीं या जान-बूझ कर भुला दी कि औरत की जात का भी कोई भरोसा..."

"वह तो इसकी जगह मर्द की ज़ात भी कह सकते हैं।"

"औरत-मर्द का चक्कर छोड़िए, यही कह दीजिए न, कि इस आदम-ज़ात का ही कोई भरोसा नहीं।"

सुनंदा हंस पड़ी, "यह भी ठीक कहते हैं आप।"

—और फिर सुनंदा सामने बस-स्टॉप की ओर देखकर कह रही थी, "ओह, यहां तो बहुत लंबी लाइन है।" फिर वह जल्दी से ही कह गयी थी, "चलिए, कहीं चाय ही पी लें।"

"आपका इन्वीटेशन किसी और दिन के लिए काम आयेगा। आज मुझे अभी घर जाना है।" पर कहते ही ध्यान आया कि मंजु शायद घर देर से ही पहुंचे। एक बार ससुर जी के यहां फ़ोन करके पूछ ले। पर इन दिनों, दिन में दो बार उनके यहां फ़ोन करना इज्ज़त-खिलाफ़ी लगी।

"ओह-ओ ! चाय पीने में क्या दो घंटे लगेंगे । प्लीज़, चलिए न मेरे लिए !"

यह सुनंदा सचमुच ही फ्री टाइप बनने का अभ्यास कर रही शायद ! और पता नहीं क्यों, वह उसे फिर बेचारी-सी लगी कि व चाय पीने के लिए राज़ी हो गया ।

पर रेस्तरां में पहुंचते ही फ़ोन करने से बाज़ नहीं आ सका लेकिन फ़ोन पर नौकरानी ही मिली, "मेम साव अबी-अबी नीचे उतर है । कोई-इ-च भी घर में नईं ।"

और वह जान गया कि मंजु घूमते-घामती घर पहुंचेगी । और भी कोलाबा से माहिम पहुंचने में उसे काफी वक्त लगेगा ।

वह टेबल पर वापिस आया तब तक ठंडे पानी के गिलास आ चुके थे । सुनंदा पानी पीते हुए पूछने लगी, "आपकी वाइफ के पेरेंट्स क्य यहीं बंबई में हैं ?"

"हां, कोलाबा में रहते हैं । फादर-इन-ला रेलवे में हैं न, वहं फ्लैट मिला हुआ है उन्हें ।"

"अच्छा, एक बात कहनी थी आपसे," फिर वह यकबयक दूसरं ही बात कहने लगी, "प्रोड्यूसर मोहन कपूर अंकल हैं न आपके । सुन है वह बहुत मानते हैं आपको । वहां चांस दिलवा दीजिए ।"

वह चौंक गया—तो क्या यही बात कहने के लिए सुनंदा उसके साथ हो ली थी । और फिर अंकल की याद भी, इस बात ने बहुत दिनो बाद दिला दी ।

"वह—हां, अंकल तो हैं । पर इन दिनों फिल्म कोई नहीं बना रहे ।"

सुनंदा की कौंधती मुस्कराहट एक झटके में ही बुझ गयी थी— "क्यों ?"

"बस, पिछली फिल्म बुरी तरह पिट गयी थी । दीवालिये-से ही हो गये । सब तरफ से नुकसान उठाकर आजकल तो चिट-फंड वाले बिज़नेस के चक्कर में हैं । यहां से कुछ माल बना लें फिर शायद पिक्चर बनायें । अभी तो कुछ नहीं ।"

थी। शायद अव वह सम्हल गयी थी इस शॉक से कि अंकलजी के यहां कोई काम ही नहीं है।

"कुछ खास नहीं।"

"आप वंवई में कव से हैं ?"

"तकरीवन आठ साल से।"

"आपके पेरेंट्स तो यहां नहीं।"

"हां, वे सव लोग—पिताजी, भाई-वहन, कोई भी अपना शहर नहीं छोड़ना चाहता। मां होतीं तो शायद आ जातीं, पर अव वह हैं ही नहीं।"—मां की वात उसने सही कही थी। वह उन्हें वुलाना भी चाहता था। पर भाई-वहनों वाली वात सच नहीं। छोटा भैया तो कव से यहां आ जाने के लिए उतावला है। वह टालता रहा। चिट्ठियों में लिखता रहा कि खुद दोस्त के साथ रहता है, जगह मिलेगी ढंग की तो वुला लेगा। पिछले साल उसने छुट्टियों में आना चाहा तो वाइ-चांस उन्हीं दिनों वड़ी साली साहिवा की शादी आ पड़ी। वहां किये खर्चे की वजह से इतनी तंगी थी उन दिनों कि छोटे भैया के सामने अपनी हालत की पोल नहीं खुलने देना चाहता था, सो तव भी उसे टाल दिया। पर वह प्रतीक्षा अव भी कर रहा है कि हालात सुधरते ही वह उसे यहां वुला लेगा।

पर वे सारी वातें सोचने से क्या!—चाय खत्म हो चुकी है। सुनंदा के पास भी अव कोई वात नहीं है शायद करने को। उसका पहला उत्साह भी खत्म है।

वे वहां से उठे। सुनंदा ने कहा, उसे तो एक सहेली के यहां ग्रांट रोड जाना है। वह सामने वाले वस-स्टॉप पर चली गयी।

वह वस की ऊपर वाली मंजिल में वैठा नीचे रेंगती भीड़ देखता रहा—चारों ओर अनपहचानापन-सा है। फिर अचानक पावटे की पैर पसारती आंखें याद आयी थीं और दीनू साहव का झुलावे में लटकाये रखना—यह सव दिमाग से जिस्म में उतर एक मिचली-सी पैदा करने लगा था।

पर नहीं, वह ऐसा मौका हरगिज़ नहीं आने देगा कि दीनू साहव

उसे हटायें। उसका घर से भागना भी तो अन्याय के विरुद्ध विद्रोह कर देना था। वेशक, तब यह नहीं मालूम था कि एक वही अन्यायपूर्ण स्थिति नहीं थी···उसी किस्म की सैकड़ों स्थितियां कदम-कदम पर बिखरी मिलेंगी। पर वह पहला झटका था। पहली वार स्वार्थ और धोखे की विकरालता के घिनौनेपन से सामना हुआ था। इसलिए प्रतिक्रिया भी बड़ी जबरदस्त थी। वरना उससे पहले तो मां-बाप की छत्रछाया में मज़े से सीटी वजाने वाले अंदाज़ में कालेज के दिन कटते थे। पर फिर अचानक मुसीवत पंजा बढ़ाये खड़ी थी। ताऊजी ने कंपनी का मालिक पिताजी को बनवा दिया था। और क्लाएंट्स से एडवांस मिला हज़ारों रुपया खुद गपक गये और फंस गये पिताजी। जिन्हें उस रुपये में से एक लाल पैसा नहीं मिला था।

घर में सम्मन आ गये, और फिर वारंट। कुछ दिनों में अनवेलेवल वारंट भी आ सकते हैं। घर-भर में घवराहट। मां रो-रोकर वीमार। अपनों से मिला इतना बड़ा धोखा!—वह बौखला गया, भयभीत हो उठा। किसी कल्पनाशील दुनिया से वाहर पटक दिया गया। फिर ताऊजी से वदला लेने की वात खूंखारियत बनकर सिर पर सवार हो गयी।—और पिताजी तो दुकान वंद कर वारंट के डर से दूसरे शहर में जाकर रहने लगे।

पिताजी को परिवार से भी वड़ी चिंता वदनामी की थी। जमा रुपयों की वदौलत घर का खर्चा चलने लगा। पर उससे सहा नहीं जा रहा था ये सब। रिश्तेदार गली का नुक्कड़ दिखाकर कहते—'देखो, वारंट निकलने पर तुम्हारे पिताजी का फोटो छपा इश्तिहार यहां चिपका सकते हैं।' और वह पसीना-पसीना हो जाता। घर में मां की वीमारी···घवराहट के मारे वह बिलकुल पागल-सा हो उठा।

पर ताऊजी फिर भी घर में आते थे और उसे गुस्सा आता, मां उनकी टांगें तोड़ घर से निकाल क्यों नहीं देती, या पिताजी ही आकर इस आदमी का गला क्यों नहीं टीप देते! यह कैसी व्यवस्था है कि इस निर्लज्ज आदमी की इज्ज़त वनाये रखने पर ये लोग मजबूर हैं! और उसका तो खून खौल उठता ताऊजी की सूरत देखते ही। पर वहां रह-

कर कुछ नहीं हो सकता था। मां फिर भी ताऊजी पर ही आस लगाती थीं कि जैसे भी हो मेरे पति को बचा लो। ऐसे में अपना सामर्थ्य दिखाने का जोश नस-नस में ठाठें मारने लगा।

लेकिन कर क्या सकता था—ऐसे में वहां से भागना ही एक विकल्प बचा था उसके लिए। इस शहर से भाग चलो—जहां कोई अपनी बात नहीं छिपा सकता, जहां किसी की मजबूरी वाली स्थिति भी तमाशे की सूरत अख्तियार कर लेती है—पिताजी को कैद हो गयी तो आसपास के मोहल्ले वाले उन्हें चोर-उचक्का ही समझेंगे। शहर में निकलना मुश्किल हो जायेगा और फिर पता नहीं कितनी विपन्नता! —ये सब कैसे झेलेगा! और वह इस महानगर में भाग आया था, और यहां यही सोचता रहा कि वहां खुद को छिपाना मुश्किल था और यहां खुद को छिपाये जाने की मजबूरी ही अंतरतम को चकनाचूर किये रखती है। किसी की बात सुनता ही कौन है।

और कुछ महीनों बाद ही घर से खबर आयी थी कि ताऊजी की कृपा से पिताजी जेल जाने से बच गये। ओह, कैसे जड़, कैसे नियतिवादी, कैसे डरे हुए लोग हैं ये! 'ताऊजी की कृपा' यानी खुद जल्लाद द्वारा ही आंसू बहाते हुए अग्नि-संस्कार करना···उसने चिट्ठी को फाड़कर फेंक दिया। वहां सब ठीक-ठाक होने की खबर तो मिल गयी। पर वह तो सब छोड़-छाड़ भाग चुका था। पीछे नहीं लौटना था।

और तब से अब तक जैसे भाग ही रहा है। पर अब भागना नहीं चाहता। सामना करना होगा। भागने की जोखिम ज़िंदगी में हर बार नहीं ली जा सकती और बीवी-बच्चों के साथ तो जोखिम लेने का मतलब वह गैरज़िम्मेदार कहलायेगा। नहीं, वह भाग नहीं सकता। डटे रहना होगा।

मंजु उस शाम नहीं आयी थी और वह इन दिनों घर से लैव, लैव से सड़कों और फिर घर में डांवाडोल-सी मनःस्थिति में घूमता रहा था।

पर उसने यह बात फिर-फिर तय की थी कि ज़िंदगी को एकदम ही ढर्राहीन नहीं होने दगा और यह भी सोचा था कि वाकी तब्दीलियां जो भी हुई हों रोज़मर्रा की वातों में, पर यह तब्दीली और नहीं चलने देगा···अनिता के साथ लंच नहीं लिया करेगा।

अनिता जिस ऑफिस में स्टेनो थी, लैव से उस विल्डिग में पहुंचने के लिए सिर्फ दो मिनट का रास्ता तय करना पड़ता है। इसीलिए उसकी परिचिता अनिता ने जव यह कहा कि "मंजु जव तक अपने पापा के यहां है, मेरे साथ ही लंच ले लिया करो!" तो अपनी सुविधा को देखते हुए यह बात उसने मज़े से स्वीकार कर ली थी।

अनिता का कहना था, "जव घर से खाना लाती ही हूं तो वाहर के खाने का झंझट क्यों करते हो।"

पर अव रोज़-रोज़ की यह वात अच्छी नहीं लग रही थी कि व्यर्थ ही किसी पर वोझ वना जाये। इसलिए आज वह वहां नहीं जायेगा। किसी कार्यवश कुछ दिन लंच खाने नहीं आयेगा—यह इत्तिला उसने फ़ोन पर सुवह ही उसे दे दी थी।

और अव वह लैव की कैंटीन में ही खाना खाने चला आया था। वायीं ओर अनायास ही दृष्टि उठ जाने से वे लोग दिखाई दिये थे। मनोचा, धीरज और सुरेश भाई—सव वहां की एक टेवल पर जमे थे।

वह वहां पहुंचा तो सुरेश भाई ने सीधे वार किया, "क्यों भैया, लंच

अभी तक नहीं लिया ?—बाहर जा रहे थे, हमें यहां बैठे देख आ गये ? अरे भाई, कैंटीन का खाना कोई इतना बुरा भी नहीं होता।"

वह सारी खीझ पी गया। बोला, "सुरेश भाई, आप पुरानी बातें नहीं भूलते। तब तो स्टमक अपसेट था इसलिए कैंटीन का खाना नहीं खाता था !"

पांच बरस पहले वह जहां सेकंड असिस्टेंट था। इत्तफाक से सुरेश भाई भी वहीं थे, सो पुरानी बातों को बात-बेबात जड़ देते हैं। हालांकि मुद्दत हुई वह जान गया है कि इन लोगों का साथ खाने-पीने में न देने से कितना बुरा मना जाते हैं। बुरा भी क्या—अपने गुट से अलग मानते हुए नौकरी तक छीन सकते हैं बॉस के कान भरकर।

और अब खूब पता है कि काम करने की क्षमता इन्हीं छोटी-छोटी बातों से भांपी जाती है। समय-समय पर कस-कसकर फेंके वाक्य—'अरे कैंटीन की चाय अच्छी नहीं लगती तो गेलॉर्ड की पिओगे क्या ?'···'साहब लोग मटन में बदबू होने की बात सोचते हैं। भाई, मजदूरी करने वाला सिर्फ मटन देखता है मटन। काम करने वाला इंसान सोचने का ढंग ऐसा ही बनाता है।'···'जनाबआली, तुम्हीं हो जो गिलासों को फिर से साफ़ करने के लिए कहते हो। कहते हो ये गंदे हैं, चिपचिपे हैं। आदतें बदलो भई, तभी कुछ काम सीख सकोगे।'···और वह नहीं समझ पाता था कि अच्छी एडीटिंग जानने वाला बनने के लिए ये सारे नुस्खे क्यों बताये जाते हैं ! इन सब का काम से क्या संबंध !

पर अब वह समझ गया है इनके अर्थ। पुराने लोगों के रंग-ढंग में शामिल हो जाना कितना जरूरी है। निजी आदतों क्या, निजी विचारों तक को दर्शाना अपनी तरक्की में बाधक है।

"हम लोगों ने तो मटन-मसाला मंगवाया है। तुम क्या लोगे ?" धीरज ने पूछा और उसे लगा, बाकी लोग अतिरिक्त ढंग से चुप्पी लगाये बठे हैं। दूसरी मेज़ों से उठता हुआ शोर और इस मेज़ पर भिनक रही मक्खियां ही जैसे पूरे अस्तित्व पर छायी जा रही हों।

"कुछ भी," ढीलेपन से इतना ही कह पाया था। उन लोगों ने आर्डर दे दिया।

वाद वाली चुप्पी में उसे लगा, धीरज और मनोचा अपनी दृष्टियों की भाषा चला रहे हैं—और सुरेश भाई ज़रा अनमने-से इधर-उधर देख रहे हैं।—या शायद आने से पहले कोई गंभीर वहस छिड़ी हुई होगी।

धीरज और मनोचा असिस्टेंट डायरेक्टर हैं···शायद दृश्यों को लेकर ही कोई वहस हो, जिसका प्रभाव और सोच-विचार अव तक कायम है।

पर कुछ देर वाद मेज़ पर घिरी अजीव-सी खामोशी से एक और खयाल लपक आया—कहीं ये वाकी यूनिट के लोग उसकी स्थिति भांप तो नहीं गये ? कहीं दीनू साहव ने साफ़-साफ़ ही उसे हटा देने की वात इनसे कह दी हो। तभी ये उसे उपेक्षित ही मान रहे हों।

पर ओह-हो, वह खुद ही वात वढ़ाये जा रहा है। ऐसा भी कभी हुआ है। साफ़ वात कोई किसी से कहता भी है। ऐन वक्त पर पता चलता है कि फलां चीज़ तो घटित हो भी चुकी। लेकिन फिर भी उसे अपनी स्थिति मज़वूत कर लेनी चाहिए और उसने भी वह खास ढंग अपनाया, सिगरेट का एक वेहद आत्मविश्वास-भरा कश लेते हुए वोला—

"दीनू साहव सुंदर फिल्म्ज़ की नेक्स्ट पिक्चर कर रहे हैं। वड़े वजट की फिल्म है।"

"तव तो चांदी है। सुना है पेमेंट रेगुलर है और काफी अच्छी है।" मनोचा वड़ा प्रभावित हुआ दीख रहा था।

"हां ऽ ऽ" वह लापरवाही से मुस्करा दिया।

"शरद, यार," धीरज अचानक वोला था, "एक वात तो वता, तेरे वाल अव तक भी सफेद नहीं हुए। कौन-सा तेल लगाता है ?"

"हां भई, यहां की क्लाइमेट में तो सफेदी झट से आती है। और फिर हर वक्त की टेंशन में वाल इतनी जल्दी झड़ते भी हैं कि क्या कहें ?" मनोचा ने अपने वचे हुए वालों पर कोमलता से हाथ फेरते हुए कहा।

सुरेश भाई चुप रहकर अपने अस्सी प्रतिशत सफेद हुए जा रहे वालों के प्रति पूर्ण उपेक्षा वरतना चाह रहे थे।

"हां, यह भी है। अव अपने सुरेश भाई को देखो," धीरज उसकी ओर देखते हुए वोला, "लगता है क्या कि यह चालीस के हैं। चेहरा इनका पच्चीस वरस के लड़के जैसा। वस वालों से मार खाते हैं।"

सव हंस दिये। मनोचा विटी वनने की कोशिश करते वोला, "जैसे अपना हीरो इतना खूवसूरत पर वस, इंच-भर की ठुड्डी से मार खाता हुआ सारा मज़ा विगाड़ देता है।"

सव हंसे पर सुरेश भाई को शायद यह वासी प्रसंग लगा था कि हीरो, हीरोइन वगैरा की वातें ये रंगरूट ही करते हैं। वह तो वजट, पब्लिसिटी जैसे गहरे विषयों की ही वातें करना चाहते हैं। वह गंभीरता से ही हुक्कानुमा स्टाइल से सिगरेट के कश लेते रहे।

"हां भई, वताया नहीं, कौन-सा तेल इस्तेमाल करते हो?" धीरज फिर उसके पीछे पड़ा था।

"तेल-वेल क्या, हम से पूछो इसका राज़," मनोचा चहका, "यह फेमिली वाला है न। वाइफ के हाथ का खाना खाता है। इसलिए तंदुरुस्ती कायम है।"

"तो सुरेश भाई भी तो वाइफ के हाथ का खाना खाते हैं।"

"वह चालीस के हैं भाई।"

"तो क्या यह गुप्ता टीन एजर है?"

सव हंस दिये। उसने यह भी नहीं कहा कि 'तुम्हें नहीं दिखते, वैसे तो वालों में छिपे कुछ वाल सफेद हो भी रहे हैं और मैंने खुद यह वात तीन महीने पहले मार्क की तो डर-सा गया था और लगा था कि अरे इतनी जल्दी···अभी तो तीस तक ही पहुंचा हूं।'—पर उसने कुछ भी नहीं कहा और अभी-अभी इन लोगों की कही दूसरी वात याद आ गयी।

लेकिन मंजु के हाथ का खाना खाये तो कई दिन हो गये—इसे कोई नहीं जानता। कहे भी कैसे! मजाक वन जायेगा और फिर कोई भी तो ऐसा नहीं जो उसकी समस्या सुलझा दे। भावनात्मक तौर से ये किसी को क्या तसल्ली दे पायेंगे। खुद ही उलझे-विखरे रहते हैं और वह चीज़ जिससे मुश्किल कुछ तो ठीक हो सकती है—वे रुपये इन

भूसे-सा है—और ये लोग ! अब खुल-से तो गये हैं फिर भी लगता है जैसे ये उसके खाना खाकर उठ जाने की प्रतीक्षा में ही हों। कोई बात है जो जैसे एक उतावली बनकर इनके चेहरों पर लटकी है—चलो, होगा कुछ ! वह ज्यादा कुछ क्यों सोचें !

खाना आया तो जल्दी-जल्दी ही खाकर उठ खड़ा हुआ।···सुबह उसने मंजु को फोन तो किया था और कितना-कितना इसरार किया था आ जाने के लिए। पच्चीस-छब्बीस दिन हो गये। क्या उसे ज़रा भी प्यार नहीं रहा उससे ! यह नहीं मान सकता कि एकदम बेरुखी हो उठी है। दरअसल यह भी उसका बचपना ही है।

और उसने सोचा कि कहीं किसी एकांत जगह जाकर, जहां ज्यादा शोर न हो, मंजु को फोन करेगा।

वैसे ससुर जी के यहां दो बार गया इस बीच। लेकिन मंजु चुप और सास जी का उत्तर—"ले जाना कभी। ऐसी भी क्या जल्दी है। इनकी तबीयत तो पूरी तरह ठीक हो जाये।"

और ससुर जी चिंताग्रस्त स्वरों में बोले, "और तुम्हारे यहां सारा दिन अकेली रहती है। तुम तो काम पर जाते हो। वहां तबीयत कैसे ठीक होगी।"

ऐसे वाक्य उसे छोटा दिखा देने के लिए काफी नहीं थे क्या ? उसने स्वयं में उभरती हीनता को तोड़-मरोड़ देना चाहा, यह सोच-सोचकर कि ये लोग तो सही ढंग से किसी को समझना जानते ही नहीं। वह एकमन हो अपनी ज़िंदगी स्वयं निर्मित करने में लगा है। मंजु के लिए सारे आराम जुटा देना चाहता है और ये लोग हैं कि दूसरों को नापने के पैमाने बदल ही नहीं सकते।

सोचते हैं कि उसकी बढ़िया तरक्की क्यों नहीं हुई। दूसरों की तरह उसने गृहस्थी में बढ़िया फर्नीचर, फ्रिज वगैरा क्यों नहीं जमाया ! —तो वह इस कमीने अंदाज़ के आगे झुक नहीं सकता। ठीक है, भौतिक धरातल पर वह अब तक अस्थिरता के दौर से ही गुजर रहा है। उसकी आकांक्षाएं साकार न हो धुंधली ही बनी हुई हैं, पर फिर

भी वह अपने को बौना होते हुए तो नहीं देख सकता।

उसने ज़रा ढीठ बनते हुए कह ही दिया, "मंजु तीन साल से वहां रह रही थी। अब कोई नयी बात तो हुई नहीं।"

"रह तो रही थी," सास जी समझाते हुए बोलीं, "पर अब क्या करे। इसका जी बहुत परेशान है। इसके पापा तो कह रहे हैं बंबई से बाहर ही हो आये कुछ दिन को। जगह बदलने से तबीयत बहलेगी।"

और मंजु थी कि चुप बैठी हुई दूध की बोतल हाथ में थामे रिकी को सोफे पर लिटा उसे दूध पिलाने में जुटी थी।—महारानी से इतना नहीं हुआ कि कह दे, 'नहीं, वहां जी तो नहीं घबराता, बस यूंही कुछ दिन यहां चली आयी हूं'—या लड़ ही ले उसके साथ। गुस्सा-झगड़ा कुछ तो करे। पर वहां तो ठंडी बर्फ की सिल्ली पर कितना भी सिर पटके, माथे पर ठंडे ज़ख्मों के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

मन हुआ था, सास जी के सामने ही उसे बांहों में जकड़ ले—'बोलो मंजु, कुछ तो बोलो—सारा प्यार कहां गया। कभी मेरे बिना एक दिन भी नहीं रह सकती थी। ज़रा देर से भी आऊं तो शक के मारे रोने लगती थी सोच-सोचकर कि 'हाय, इनका किसी और से तो कुछ नहीं चल रहा। जो मुझमें समाये रहना चाहती थी हर पल। क्या प्यार कभी ऐसे भी खत्म होता है।'

पर वह कुछ भी नहीं कह सका। सास जी वहां से उठीं तो भी कोमलता संजोये मंजु से कुछ कहना बेमानी लगा। और ज़रा-सी कोशिश की भी तो मंजु ने घुड़क दिया—

"क्या घर में तमाशा दिखाना चाहते हो?" फिर एकदम थकावट से भरपूर निढालता में जैसे अंतिम निर्णय फिर से सुनाते हुए बोली थी, "तुम्हें मालूम तो है, अभी मैं नहीं चलूंगी वहां। अभी मैं इतनी बीमार हूं कि कोई तकलीफ नहीं सह सकती।"

पता था कि ऐसे में कुछ भी कहा तो वह पिछले दिनों के सारे किस्से नाटकीय ढंग से दोहराने लगेगी। और जो पूछे कि बीमारी

क्या है—यही सिर चकराना, आंखों के आगे अंधेरा छाना या बात-बेबात रो पड़ना—यही न। तो इसका इलाज क्या अपने घर में रहकर नहीं हो सकता !···पर इसके जवाब भी तैयार ही होंगे।

उसने भभकते हुए ही पूछ लिया था, "तो नहीं चल रही न। यह तो बताओ कम से कम कि कब तक यह नाटक चलेगा ?"

"यह नाटक है ?" मंजु ने फिर भी गुस्सा नहीं दिखाया। एकदम निर्जीव-सा स्वर, "तुम कुछ समझते ही नहीं, तो तुमसे बात ही करना बेकार है।"

ओह, हीन से हीनतम बनाये जा रही है। यानी वह बात समझने के काबिल भी नहीं रहा। मंजु को नहीं समझ सकता ? मंजु ? क्या इसका नाम मंजु ही है।

अपमान, निराशा, कुंठा, प्यार, मोह—ये सब मन में ऐसे बुनड़ रहे थे कि वहां से हिल नहीं पा रहा था।

छोटी साली साहिबा इस बीच फिर एक बार झांक गयीं। शायद देखने आती हैं कि कोई बड़ा झगड़ा तो नहीं हो रहा। उसने डूबते मन से एक और प्रयत्न का छोर पकड़ने के लिए रिकी को पास बुला लिया और उसके गालों और माथे को चूमने लगा।

"इसे ले जाऊं ?"

"कोई ज़रूरत नहीं," मंजु ऐसे सनसनाकर बोलेगी उसे ख़याल भी नहीं था, "हद है, छोटी-सी बच्ची तुमसे सम्हलेगी ? अभी तो ठीक से चल भी नहीं सकती। ज़रा कुछ दिन अकेले क्या रहना पड़ गया है कि हल्ला मचा रखा है।"

रिकी 'पा-पा···आ-आ' के मीठे-मीठे स्वर, अपने नर्म हाथों को गाल पर बजाकर अपने स्पर्श में ही उंड़ेल रही थी जैसे···उसकी सफ़ेद फ्रॉक पर फूल कढ़े हुए थे और उन गुलाबी फूलों के बीच वह गोल-मटोल, सुनहरी बालों वाली गुड़िया-सी चकित-चकित आंखों से उसे देख रही थी।

इतनी मासूम, इतनी नन्ही···डर लगता है कि संभालूं कैसे ! सचमुच मंजु ठीक ही कह रही थी। वह अकेला इसका ध्यान कैसे रख सकेगा

···और फिर लैब का लंबा-चौड़ा काम।—उसने प्यार से दो-तीन बार रिंकी के माथे को सहला दिया। सचमुच वह क्या करे ! यह मंजु भी घबराकर अपना आप ही खो बैठी है। वह कुछ नहीं कर सकता। इंतज़ार कर सकता है कि वह वक्त कब आये जो उसके हक़ में हो। और वक्त का इंतज़ार करते रहना—इससे ही तो उसे चिढ़ है। सख्त चिढ़।

"आओ बिट्टी," रिंकी को प्यार से बुलाती हुई मंजु सोफे से उठी थी, "सुला दें तुम्हें। छुला दें न रानी मेरी।"

मंजु उसका हाथ थामे बेडरूम में चली गयी थी। वह जानता था कि सचमुच यह रिंकी के सोने का समय है। पर फिर भी ऐसे लगा कि मंजु उससे बचना चाह रही है—और यह सहना कितना मुश्किल था। पर जल्दी ही मंजु आ गयी थी। हल्की-सी मुस्कराहट लिये—

"मैं कहती हूं, यहीं आ जाओ कुछ दिन। क्या है, पापा बुरा नहीं मनायेंगे। ममी भी कुछ नहीं सोचेंगी। खुश ही होंगे। मेरा भी ध्यान लगा रहता है इस तरफ कि तुम्हारे खाने की गड़बड़ होती होगी।"

उन दोनों के बीच खाने और घर की बात जो पुल बना सकती थी वह बन गया था। इसी पर चलकर किसी मधुरता का उजाला फिर से पा सकता था। पर जाने क्यों वह अपने भी बिना जाने कटु-सा हो आया था, "क्यों, खाने की चिंता क्यों ? जब मेरी ही चिंता नहीं। तुम तो बाहर घूमने जाने के प्रोग्राम बना रही हो।"

"कैसी बातें करते हो ?" आंखों में अहम् की कोई घायलता-सी कंपकंपायी थी, "ओह, तुम मुझे नहीं समझ सकते, नहीं समझना चाहते मैं ही गलत थी। ओह···" वह रोने वाली मुद्रा में आ गयी थी।

"मं ऽ ऽ जु !"

"बस कु ऽ ऽ छ नहीं। तुम समझते नहीं···" और वह पल्ले से मुं दबाती अंदर चली गयी और वह पिटा-पिटाया-सा बैठा रह गया। क्य यह बेडरूम में खूब रो रही होगी ?—वह खड़ा हो गया। क्योंकि उ यह सोचकर भी बेहद गुस्सा आने लगा था कि मंजु ने आखिर उ समझ क्या लिया। ज़रा-से हालात बिगड़े तो क्या सास-ससुर के घ में पड़ा उनका मोहताज हो जायेगा। तभी सास जी आ गयी थीं अ

वह उनसे ही चलने के लिए विदा लेने लगा।

पर वाहर निकला तो देखा, वह भी पीछे ही चली आ रही हैं। एक वार इन्होंने ही इस घर में कभी न आने के लिए कहा था। तो क्या आज भी वैसी ही वात दोहरायी जायेगी। वह उनके ही कुछ कहने की प्रतीक्षा करता रहा।

पर हमेशा की तरह आज भी सोचे हुए के विरुद्ध हुआ था। सारी विल्डिंग्ज़ के वीच वने लॉन के चौकोर टुकड़े तक ही पहुंचा कि वह वड़े मनुहार से वोलीं, "वुरा मत मानो शरद। सव ठीक हो जायेगा।"

इस अचानक सहानुभूति को पाकर वह वौखला-सा गया था।

"मैं तो कहती हूं, मंजु घवरा गयी है। मैंने तुमसे पहले ही कहा था, उसने कभी तकलीफ नहीं देखी। घर में इतने भाई-वहन हैं, हमारी रिश्तेदारियां भी वहुत हैं, हमेशा भरे-पुरे घर में रही है, मतलव कोई कमी उसने नहीं सही। पर तुम्हें उस वक्त लगा था कि हम लोग तुम्हारे रास्ते में आ रहे हैं। गलत वातें समझाकर वहका रहे हैं।"

"उसने कुछ कहा आपसे?" वह मंजु को कितना भी चाहे पर यह नहीं वर्दाश्त कर सकता था कि वह अपने मां-वाप को उसके सारे हालात वता दे। तो क्या यह भी वता दिया होगा कि मकान-मालिक ने नोटिस भेज दिया है।

लेकिन उन्होंने जवाव दिया था कि मंजु तो कुछ नहीं कहती पर क्या वह खुद ही अंदाज़ा नहीं लगा सकतीं स्थिति का?

"चलो, पैसा तो आनी-जानी वात है। आज तंगी तो कल खूव कमा भी लोगे। पर उसे वहां अकेले रहना पड़ता है काफी-काफी रात तक। तो तवीयत सम्हालना और भी मुश्किल हो जाता है न," वह ज़रा झिझकीं और फिर ज्यादा ही जल्दी से वोलीं, "मैं तो यही चाहती हूं कि मंजु अपने घर चली जाये। यह वात अच्छी नहीं।"

अचानक ही उसे वह अपनी तरफ़दारी में लगीं। पर शायद इसी-लिए वदल चुकी हैं कि ज्यादा व्यावहारिक हैं और वहुत दिन वेटी का मायके में रहना ठीक नहीं समझतीं। वरना मंजु के पापा, उसके दोनों भाई और वह एक वहन सव खुश ही नज़र आ रहे थे उसकी मात पर।

उनकी व्यंग्यात्मक दृष्टियां उसे चुभ जातीं मानो कह रही हों कि देखा, हम तो पहले से ही जानते थे कि यह शादी असफल ही होनी है।

पर अब इनकी बातों से बड़ी तसल्ली मिल रही थी। वह गेट तक ही चली आयीं और अंत में यही कहा, "तुम दोनों ही नहीं, रिंकी भी तो है इसलिए भी मंजु को ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए और तुम्हें भी।" फिर जल्दी से बोलीं, "खैर, अभी शायद वह मेरी बहन के पास कुछ दिनों के लिए अहमदाबाद चली जाये तो ठीक है। वापस आने पर तो मैं सीधे ज़बरदस्ती ही जैसे भी हो उसे अपने घर चले जाने को कह दूंगी—और तुम भी रोज़ आओ। रात का खाना यहीं खाया करो।"

और वह आशापूर्ण मनःस्थिति में ही लौटा था। मन में एक लहक भी थी कि हां, अब वे नहीं झगड़ेंगे और यह भी कि मंजु ज़िंदगी के किसी क्रूर पहलू को देखना तक नहीं चाहती, ना ही मानना। वह एक खिलखिलाते विश्वास में जीना चाहती है तो काश, उसका भी ऐसा सामर्थ्य हो कि वह भी उसके विश्वास के मासूम रूप को बना ही रहने दे!

पर अगले दिन उठा तो सुबह के उजाले में कहीं कोई आशा नहीं थी। पता नहीं क्यों, नींद-नींद में ही रात-भर कुछ ऐसा महसूस होता रहा था कि वह मंजु को अपने साथ लिपटाये सो रहा है। मन भी भरा-भरा-सा है, कोई कोना खाली नहीं।

लेकिन उठते ही मंजु-विहीन बिस्तर उसे रेगिस्तान-सा लगा। कितने दिनों से न बदली गयी उस मटमैली चादर पर पड़ी उसकी शिथिल बांह मानो उसे ही मुंह चिढ़ा गयी।

मंजु तो अभी भी पापा के यहां थी—और वह वहां से आ जाये, ऐसा कोई तरीका वह अभी खोज नहीं पा रहा था।

इस वीच इतना काम उसने ज़रूर किया कि दीनू साहव के घर के चक्कर लगाने शुरू कर दिये थे। और जान लिया था कि वह उसे अपने साथ रखेंगे ही। क्योंकि न रखना होता तो वह उसे घर आने के लिए अनुत्साहित करते या उससे चिढ़कर वात करत या खुद ही कह देते कि कहीं और काम ढूंढ़ो। पर वह उसके इस तरह चक्कर काटते रहने पर खुश ही दीखते थे।

पावटे वहां सुवह-शाम जमा रहता। पर वह भी ढीठ बना हर सुवह तो हाज़िरी दे ही देता—यह पूछने के लिए कि मेरे लायक कोई काम ? और दीनू साहव की कृपा ही थी कि उन्होंने कुछ निजी काम, मसलन विजली का विल जमा कराना, आर्डर की हुई स्टील की अलमारी उनके घर पहुंचाना—ऐसे दो-चार काम उसे सौंपे भी थे। इसलिए वह उनकी ओर से काफी आश्वस्त हो गया था।

पर फिर भी उसे लगता था, महसूस होता था कि कहीं कुछ वदल-सा रहा है। क्या ? यह उसे खुद पता नहीं। मानो किसी वदलेपन की ठीक शक्ल पहचान लेने के लिए ही वह शेव करने के वाद सफाचट चेहरे को शीशे में टटोलता-सा रहा। चेहरा पीला-पीला उतरा-सा। कुछ देर को यकीन नहीं हुआ कि यह उसकी अपनी ही शक्ल है। जैसे पिछले तीन-चार सालों में आज ही गौर किया हो। और एक झटका लगा था···लगा, पांच साल में दस साल पार किये हैं। वह एकदम से

शीशे के पास से हट आया ।

नहा-धोकर वह लांड्री गया । कम से कम बेहद उजले कपड़े पहन-कर ही थोड़ा-सा कम उदास हो लिया जाये । फिर घर से निकला तो ग्यारह बज रहे थे । बादलों की वजह से धूप बिलकुल नहीं—पर इसीलिए यह बरसात का मौसम अच्छा भी लगता है कि कुछ तो बदलाव आया । वरना यहां हमेशा मौसम तकरीबन एक-सा रहता है । जिसके लिए वह यही सोचता कि बेहद गर्मी और बेहद सर्दी से लड़े मुद्दत हुई । वरना मौसम की ज्यादतियों से लड़ने में मिली छोटी-मोटी दिक्कतें बड़ी तकलीफों की याद कुछ देर को भुला देती हैं ।

वह बस-स्टॉप तक पहुंचा तो किसी जुलूस की वजह से रास्ता रुका हुआ पाया । बहुत सारी मांगें थीं, क्योंकि लोगों के हाथों में पकड़ी, ऊंची की हुई तख्तियां बहुतायत में थीं ।

उसने ध्यान से पता चलाना चाहा कि ये कहां के लोग हैं । पर किनारे खड़े लोगों की भीड़ पार कर उचक-उचककर देखने का उत्साह स्वयं में नहीं पाया । कोई भी हो, क्या फर्क पड़ता है । जुलूस जेनुइन भी होते हैं और अपने फायदे के लिए किसी के द्वारा छेड़े गये शोशे भी ···दोनों तरह के जुलूसों में से एक ही होगा न ! दोनों ही बातों में थकना इन्हीं सड़क पर चलने वालों को है···आवाजें ही आवाजें थीं बस—'लड़ जायेंगे···मर जायेंगे···हक छोड़कर नहीं जायेंगे ।'

बार-बार इन्हीं नारों की आवाज सुनते हुए कान पत्थर-से हो गये और ये आवाजें अपने अर्थ तक खोने लगीं—इतनी अर्थहीन कि उसे लगने लगा, वह चार-पांच मिनट से नहीं, बीस-पच्चीस सालों से ऐसी आवाजें सुन रहा है। जो किसी अभेद्य दीवार से टकरा-टकराकर बिखर जाती हैं ।

···छोड़ो जी, जो भी है···उसे अपना सोचना चाहिए । हां, उसे एक जगह भुगतानी ही है । मकान मालिक के घर जाकर बेहद मिन्नत-खुशामद कर उसे अगले महीने तक रुक जाने के लिए कहना ही था वरना केस वगैरा के झंझट में फंसना एक और मुश्किल खड़ी कर देगा । इस सबके बाद ही खाना खाकर वह लैब पहुंचा था ।

मकान मालिक के सामने गिड़गिड़ाने की जितनी एक्टिंग की थी उसकी थकान अब उसे महसूस हो रही थी। पर चलो, कुछ दिन के लिए मामला टल तो गया ही। दीनू साहब अब तक नहीं आये थे। उस नये सीन की एडीटिंग का काम शुरू हो ही चुका था। लिपमूवमेंट साउंड से मैच करने का काम था आज। उसने मूवेला ऑन किया। छोटे-से चौखटे वाले स्क्रीन पर अभिनेत्री का क्लोज़-अप आ गया और उसने फ्रेम को वहीं रोक लिया। इसी तरह फ्रेम रोक-रोककर देखते हुए वह मैचिंग का काम करता रहा।

कोई पांच बजे उसने चाय मंगायी थी। छोकरा चाय ले आया तो लाइट ऑन कर खिड़की खोली थी। बाहर तेज़ बारिश थी। खिड़की के बाहर वाली एकरस बूंदों को देखते और चाय के घूंट भरते वह ऊब-सा गया। अभी-अभी मूवेला पर रुके फ्रेम पर हीरोइन का चेहरा टिका था। वही ज़हन में चमका और बुझ गया मंजु की याद के साथ।

इतनी देर से वह हर फ्रेम पर हीरोइन की अदाएं देख रहा था कि अब मंजु के लिए बेचैन हो गया। और यकायक ही एहसास हुआ था—सचमुच मंजु के लिए बेचैन है या एक औरत की आकृति के लिए ही। —वह अपने ही मुंह पर व्यंग्य का थप्पड़ मार रहा था। अब अपना सच-झूठ पहचानना ही मुश्किल हो रहा है न। तो क्या वह खुद ही एक झूठ बन गया है ?

पर इससे भी क्या घबराना। सच और झूठ दोनों ही आदिम चीज़ें हैं और वह खुद भी आदिम चीज़ है—तो आदिम तत्त्व सिर्फ पेट भरना, खुश होना चाहता है, या शिकार होने से बचना चाहता है और यह दूसरा काम तो कम-अज़-कम वह कर ही रहा है।

"क्यों, बैठे क्या सोच रहे हो ?"

पावटे इसी वक्त आया। जब वह काम कर रहा था तब नहीं आया। अब दीनू साहब से कह देगा, शरद तो बैठा चाय पी रहा था और बारिश का नज़ारा देख रहा था। उसने झट से बचाव किया—

"दीनू साहब कब आयेंगे, कुछ पता है ? अब आगे का काम उनके

विना नहीं हो सकता। वह वतायें, देखें—तभी होगा···और तुम आज आये नहीं ?"

इतना कुछ सुन पावटे भी सिर्फ काम की ही वात कहने लगा, "दीनू साहव नीचे आ गये हैं। वस आ ही रहे हैं। मैं भी उनके साथ ही था न।"

"हूं।" वह मूवेला पर चलाने के लिए दूसरा स्पूल फिट करने में व्यस्त हो गया।

दीनू साहव आये तो फिल्म के डायरेक्टर के साथ। डायरेक्टर साहव काफी जोश में थे कि आज वह खुद दीनू के साथ एडीटिंग पर वैठेंगे।

"वेशक, तुम जाओ शरद, आज तो तुमने काफी काम कर ही लिया है।" दीनू साहव ने स्वयं ही कह दिया तो वह भी वहां से चला आया। वह वाहर आ गया। वहीं धीरज भी वातचीत के लिए पास आ खड़ा हुआ था।

और कुछ देर वाद जव वारिश थम गयी तभी गेट की तरफ जाता पावटे दिखाई दिया। धीरज ने उसे वुला लिया। नजदीक आया तो वोला, "क्यों पावटे, पाव-रोटी का इंतजाम करने जा रहे हो अपने साहव के लिए ?"

पावटे से पाव-रोटी शब्द मिलाते हुए धीरज ने जवरदस्त शरारत-भरे लहजे में छेड़ा था।

पावटे कटकर रह गया। और उसे धीरज के रिमार्क से मजा आ गया था कि जो चोटें वह पावटे पर नहीं कर सकता किसी और ने तो कीं।

पावटे से कोई जवाव देते नहीं वना धीरज जैसे धाकड़ के सामने। "जल्दी में हूं। पाव-रोटी वगैरा क्या मतलव ?"—वह चल दिया और धीरज ने एक ठहाका लगाया था। जो थोड़ी दूर चले गये पावटे तक जरूर पहुंचा होगा।"

"नंवर वन मस्कय्या है। ठर्रे का इंतजाम करने जा रहा है साहव के लिए। आज लेट एडीटिंग है तो क्यों प्यारे, तुम्हारे कमरे में खूव

जमेगी।"

वह सिर्फ मुस्कराकर रह गया। माहौल की एकरसता को काटने के लिए ये लोग ठर्रे उड़ायें या जो करें, उसे तो बस मज़ा आ गया था, यह सुनकर कि यूनिट के लोग पावटे को कुछ खास नहीं समझते। इसका मतलब उसकी स्थिति मजबूत है ही। हां, वह राजनंद भी तो उसकी तारीफ ही कर रहा था। आखिर प्रोडक्शन इंचार्ज का असिस्टेंट है। उसकी राय का मतलब है कि दूसरे लोग भी वैसी बातों के प्रभाव में ही होंगे।

उसने कहा था, "तुम्हारे काम की तारीफ़ तो कैमरा डिपार्टमेंट तक में भी है। वहीं का चीफ असिस्टेंट वह संजय है न, वही बता रहा था कि तुमने कटिंग की ऐसी सजेशंस दी हैं कि कई शॉट डल होने से बच गये।

राजनंद की बात याद करते उसे ध्यान आ गया था कि अभी दो घंटे पहले ही वह आया था और कह रहा था कि बहुत ज़रूरी काम है। जाने से पहले मिल लेना। पर अब तो कहीं दिखाई ही नहीं दे रहा।

"राजनंद नहीं दिखा।" उसने साथ खड़े धीरज से पूछा था।

"वह! वह तो यहीं पास बैठा होगा, अभी-अभी कुछ देर पहले मुझसे दस रुपये उधार ले गया। बोल रहा था कि कल सुबह की गाड़ी से वाइफ और बच्चे आ रहे हैं। पैसे चाहिए। बेवकूफ आदमी को देखो तो ज़रा, रुपये मिल गये तो कहने लगा कि अभी 'थ्री कॉयन्स' में जाकर डिनर लूंगा। इतनी जल्दी सच उगल गया। दो मिनट भी नहीं पचा सका।"

धीरज से ये सब सुन वह राजनंद से मिलने वहीं चला गया। वह सचमुच रेस्तरां में ही बैठा था।

"तुम मिल गये वरना मैंने तो सोचा था क्या पता उठ चुके हो यहां से। हां, कहो, क्या काम था।" वह उसके सामने वाली सीट पर बैठ गया।

"अरे वाह! दोस्त हो तो तुम जैसा। मेरी बात का इतना खयाल

रखा।" फिर वह झट से पूछने लगा, "क्या लोगे ?"

उसने देखा कि वह कटलेट और चीज़-टोस्ट खा रहा है। यानी वही डिनर खा रहा है जिसके बारे में यह धीरज से कह आया है।

"नहीं, बस कुछ नहीं, सिर्फ कोक ले लूंगा।"

बेयरा कोक-भरा गिलास ले आया तो प्लेट में से बर्फ के टुकड़े उठा उसमें घुलाते हुए उसने पूछा था, "हां, तो और क्या हाल है ? वह बात कौन-सी कहनी थी मुझे ?"

"वह तो कभी भी कह लूंगा। हां, अपने हाल के बारे में बताऊं, यही कि मैं जल्दी ही सी० के० जी० का बिज़नेस एग्ज़ीक्यूटिव बनने वाला हूं। पर अभी किसी से कहना मत।"

उसे पता है कि 'किसी से कहना मत' कहकर भी यह खुद ही कइयों से कह देगा।

"ऐसा ? यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

"हां, वह तो है ही और कहो तो तुम्हारा चांस जमाने की कोशिश करूं ? नेक्स्ट में दीनू की जगह तुम्हीं रहो।"

"क्या बात करते हो ?"

"क्यों, तुम्हारे दीनू साहब ने उस भलेमानस के साथ यही नहीं किया था क्या ?" सब जानते हैं कि आप्टे के असिस्टेंट दीनू ने उस कंपनी का काम ले लिया जहां पहले आप्टे खुद था।"

"किया होगा। पर दूसरों की नकल करके मैं अपने सही उसूल खराब नहीं कर सकता।"

"नहीं कर सकते, क्योंकि तुम डरपोक इंसान हो।"

वह हैरान हो गया कि राजनंद इतना जलभुन क्यों गया है ! क्या इसीलिए कि वह खुद इतना हताश है कि किसी दूसरे में ताज़ा जोश नहीं सह सकता और फिर इसमें विफलता की कुंठा तो होगी ही— इसके बारे में वह जानता ही है कि यह एम० ए० होने के बावजूद कितने अनपढ़नुमा स्टाइल में झाड़-झांपड़ जैसे हुक्म सहने वाले काम में घिसट रहा है। और बीच-बीच में बेकारी आने पर दोस्तों से चवन्नी-अठन्नी तक मांग लेने की भी इसे आदत-सी हो गयी है।

और राजनंद अपने खास अंदाज़ वाले तैश में ही था, "वड़े ईमान-दार वनते हो। कोई पूछने नहीं आयेगा कि आप वहुत नेक हैं, आइए, हम आपकी आरती उतार दें···मैं वता दूं तुम्हारी हालत भी सव से अलग नहीं। कव तक वचोगे !···जगह-जगह चूहेदानियां फैली हैं। हम मुसीवत के मारे रोटी की तलाश में घूमते, जाने कव कहां फंस जायें। इसीलिए कहता हूं कव तक वचोगे ?"

इस वक्त भी उसे परेशान और वेचारा समझ सह जाना चाहा। हल्केपन से ही कह दिया, "छोड़ो यार, मुझे यह प्रपोज़ल सूट ही नहीं करता।"

"एक वात कहूं—हर युग का अपना एक सत्य होता है जो साइंस की थ्योरी की तरह ही बन जाता है। किसी को किक करो और जगह वना लो।"

वह दिल खोलकर हंस दिया,"लगता है, तुम हिस्ट्री में काफी कच्चे रहे हो।"

"इसके माने ?"

"यह कव नहीं हुआ। हर युग में इस प्रवृत्ति के लोग यही करते थे। अपनी जगह वनाने के लिए लड़ते थे। सिर्फ किक क्या वह तो खून-खरावे तक करते थे।"

"ऊंह।"—राजनंद ने अव कुछ और उत्तर नहीं दिया था, तो उसने भी इसे व्यर्थ की वहस मान आगे कुछ नहीं कहना चाहा।

"वैसे तुम भी अपनी जगह ठीक हो।" राजनंद ने ही कुछ देर वाद कहा और अव यूं लग रहा था मानो वह एकदम दूसरे ही मूड में आ गया है। आवेश सिरे से ही गायव है वल्कि वड़ा मसकीन भाव वहां है, "अपनी तरफ से सव सही ही सोचते हैं। ये तो उनकी वन-विगड़ रही स्थितियां उनके सोचने पर गलत या सही की मुहर लगा देती हैं।"

वह खोयी-खोयी-सी आंखें लिये, कांटा-छुरी समाप्ति के ढंग से प्लेट में फेंक, छत की तरफ घूर रहा था और उसे घवराहट होने लगी कि कहीं इस आदमी को फिर वही घोर साधुआना दौरा तो नहीं पड़ने लगा जो दोस्तों में कुछ कह गुज़रने के लिए आता है।

पर शुक्र है कि वह जल्दी ही वर्तमान में लौट आया और उसका दूसरा वाक्य था, "भाई शरद, वहुत तंगी में हूं। कल पंजाव-मेल से वाइफ और वच्चे आ रहे हैं और पास कुछ है ही नहीं। सुनो, तुम कुछ दे सकोगे ?"

"ओह, तो यह वात थी।···उसे यही काम रहा होगा।" पर पता नहीं क्यों राजनंद से चिढ़ के स्थान पर, उसका दीन वना चेहरा देख, मन करुणा से भर गया था।

"धीरज से भी लिये हैं। वेचारा वड़ा भला है।"

उसे धीरज याद आ गया जो इसे रुपये देकर सव को वताता फिर रहा था और साथ ही यह भी कह रहा था कि राजनंद ने झूठ वोल-कर रुपये लिये हैं।

उसके मन में राजनंद के प्रति और भी सहानुभूति उमड़ आयी और कुछ देर पहले की उसकी अनाप-शनाप को वड़े खुले दिल से माफ करते उसने पर्स निकाल कहा था, "देखो भई, अपने पास तीस हैं अभी इस वक्त···आधे-आधे का हिसाव। तुम आधे ले लो।

राजनंद ने जल्दी से रुपये लपक लिये थे, "वस तनख्वाह मिलते ही दे दूंगा।"

और जब वह उससे अलग हुआ तो एक अजव तसल्लीनुमा खुशी थी मन में—किसी की मदद की। किसी के काम आया। इसका भी अपना एक अलग सुख है। और मज़ा यह है कि यह सुख अपने ही भीतर से उपजता है। किसी का मोहताज नहीं। और यह सब सोच-सोचकर ही काफी दिनों वाद उसने खुद को तनाव-मुक्त पाया।

अगले दिन वही अच्छा मूड वरकरार रहा। काम भी ढंग से हो रहा था। दीनू भी खुश दीख रहे थे और नियत समय पर काम पूरा हो ही गया था।

निगेटिव कटा तो पेड़े वंटने के वाद वड़ा चैन मिला था सारा काम पूरा होने का।—वस अव सेंसर होने के वाद सर्टिफिकेट जॉयन करना ही तो वचा है या अगर कुछ काटेगा सेंसर तो थोड़ा-सा काम वही हो जायेगा।

वह दुआ मना रहा था कि पिक्चर हिट हो जाये और बोनस मिले। क्योंकि यही प्रोड्यूसर ऐसा है जो बोनस देता है वरना ऐसे-ऐसे महारथी हैं जो लाखों का लाखों जेब में भरने पर भी कुछ नहीं देते—और ऐसे में कई बार उनके टेक्नीशियन खाली जेबें, खाली पेट लिये बीवी-बच्चों को भूल ठर्रे से गम गलत करते रहते हैं।

पर यहां तो बोनस मिलेगा—वह इस खयाल से ही बेहद खुशी महसूस कर गया और एडीटिंग-रूम से निकल सुरंगनुमा रास्ता लांघते हुए वह गुनगुना-सा रहा था। वहीं के टायलेट में घुसा तो आज वहां की स्थायी सड़ांध ने भी बहुत मन खराब नहीं किया। वरना यह सड़ांध ही महसूस करवा देती थी कि वह बहुत-बहुत सालों से इसी जगह सड़ रहा है।

वह वहां से हटा तो टायलेट में ही आता पाबटे दरवाज़े पर मिल गया। उसे देखते ही बेमतलब की हंसी हंस दिया।

"साहब किधर है ?" उसने रुखाई बरतते हुए ही पूछा था।

"उधर थियेटर में 'रश' चलता है न।"

वक्त काटने के लिए वह एक चक्कर नीचे लगा आया। कांच वाले कैबिनों के दरवाज़े जहां खुलते थे उसी पतले गलियारे में लक्ष्मीजी की तस्वीर थी—ऐन उसी के नीचे ज़रा दायीं ओर उनकी कंपनी की लोहे वाली अल्मारी रखी थी।

अब प्रिंट्स निकलने शुरू होंगे—प्रोड्यूसर ने यह इंतज़ाम अभी से पक्का कर लिया है। निगेटिव और सारे प्रिंट्स लॉक्ड अल्मारी में रखे जायेंगे। क्योंकि बीस दिन पहले वाली वारदात से बहुत लोग चौकन्ने हो गये हैं। किसी की पिक्चर के दो प्रिंट गायब करके बाहर स्मगल कर दिये गये। सब एक-दूसरे पर इल्ज़ाम लगाते रह गये। पर किसने और कैसे गायब किये—यह पता नहीं चल सका।

इसीलिए सी० के० जी० ने अभी से नाकाबंदी की है। सब लोग कह रहे थे कि ऐसा भी क्या डरना ? इसी बार इतना क्यों डर गये हैं!

सी० के० जी० के बारे में यूं भी मशहूर है कि बेहद चालाक आदमी है भांपने के मामले में। उन्हें कोई बेवकूफ नहीं बना सकता।

लोग यह भी सुनाते हैं कि यह आदमी हुंडी-मार्केट के दलाल का चपरासी-नुमा असिस्टेंट था कभी। लोकल का सफर विदाउट टिकट करता था और पाव-ऊसल का लंच खाता था। पर आज कोई वे दिन याद दिलाये तो साफ इनकार कर जाता है। सोफियाना ढंग से चश्मे के सुनहरे फ्रेम से मढ़ी आंखों में दार्शनिकता का भाव चढ़ाये कहता है—

"जस्ट फॉर एक्सपीरियेंस सेक, वन शुड सी ऑल स्फिअर्स ऑफ लाइफ।" फिर काली डाई से रंगे सफेद वालों में उंगलियां उलझाता कहेगा, "मैंने उस काम को स्टडी किया था कुछ दिन। वैसे तो तव भी अपना कारोवार चलता था खूव।"

और रोव ऐसा है कि डायरेक्टर तक उसके सामने फिल्म पर अपने अधिकार वाले रिमार्क देने से हिचकता है। और फिल्म पूरी होने पर तो सी० के० उसे विलकुल ही निजी संपत्ति मानता है।

इस वात के ध्यान ने उसे कुछ और भी याद दिला दिया था कि फिल्म पूरी हो गयी। एडीटिंग खत्म। मतलव चालू मीटर यानी पेमेंट भी वंद। और अभी दूसरा और कोई काम नहीं।—सिर एकवारगी ही घूम गया था।

कांच के दरवाज़े के पार एक केविन में कैमरा डिपार्टमेंट का चीफ असिस्टेंट संजय दिखाई दिया और वह गप-शप के लिए उसके पास जा वैठा। थोड़ी देर वात वहीं राजनंद भी आ गया था। उसने वताया कि जो आदमी प्रिंट चेकिंग का काम लेता है वह वहुत विज़ी है।

तभी संजय ने कहा था, "तो किसी अपने आदमी को दे दो यह काम।"

संजय उसकी तकलीफ को जानता था, झट से आगे बोला, "अपने शरद की दूसरी पिक्चर तो शुरू नहीं हुई। यह कर लेगा ना?"

"हां, यही कर लें, अच्छा ही है।"

और उसे यूं महसूस हुआ कि पहली बार ऐसा हुआ है। जिस समस्या के बारे में सोच-सोचकर वह घबराया था उसका इतनी जल्दी हल मिल गया। इसका मतलब दिन फिरने ही वाले हैं और वह इतना-सा सहारा पाकर पूरी ज़िंदगी के प्रति ही विश्वास से भर गया था।

वह बाहर आ गया। दीनू साहब से मिलकर ही जाना चाहता था। उसे मालूम था वह छोटा-सा थियेटर-रूम आज खचाखच भरा है। कितने ही मेहमान थे। सेंसर से पहले वाले शो में तो यही होता है अक्सर। लोग टूटते हैं इस शो पर—कैबरे का चरम उत्तेजक रूप देखा जा सकता है। प्रेम-दृश्य पूरे उफान पर होते हैं। यह सोचते-सोचते उसे यह भी याद आ गया कि शो शुरू होने से पहले अपने प्रोड्यूसर सी० के० भी तो कुछ लोगों से यही कह रहे थे—"अरे भाई, इतना सब रहेगा कहां?" पर इतना ज्यादा रखेंगे तभी तो इससे आधा रखा रहेगा। क्योंकि कुछ न कुछ तो कटना होता ही है। थोड़ा-सा होगा तो वह सारा ही कट जायेगा।"

वह थियेटर तक पहुंचा तो शो खत्म हो चुका था। सी० के० जी गाड़ी में बैठे हुए थे। डायरेक्टर और दीनू साहब सहित अन्य कुछ लोगों का हजूम उन्हें घेरे हुए था। वह इंतज़ार करने लगा। गाड़ी चली तभी दीनू इस ओर आये।

"दीनू साहब, एक बात है।"

"हां कहो," वह अपनी मोटी-नाटी हथेली से आंख खुजलाते बोले थे।

"प्रिंट चेकिंग का काम मैं कर लूं। देखिए, बहुत तंगी में हूं न।" उसने पाया कि वह ज़रूरत से ज्यादा घिघिया गया है।

"ऑफ कोर्स मैं क्यों नहीं चाहूंगा। कैरी ऑन।"

यह अप्रत्याशित था, खतरनाक था। उनको इतनी जल्दी आसान वनते उसने कभी नहीं देखा। वह तो हर वात में मीन-मेख निकालने वालों में से हैं या फिर शहीदाना मुंह वनाकर कह सकते थे—'भई, देख लो। अपनी प्रेस्टिज खराव न हो तो छोटे-मोटे काम लो। वैसे मैं क्या कह सकता हूं। जैसी तुम्हारी मर्जी।'

पर आज तो वढ़िया मिज़ाज है। चलो, मान तो गये। उसे इसी से मतलव है, न कि उनके विश्लेपण से।

"थैंक यू सर।" यह कहते-कहते वह वेसाख्ता यह भी पूछ वैठा, "सुंदर फिल्म्ज़ की पिक्चर कव शुरू हो रही है ?"

"क्या मालूम, मेरा भी पक्का कांट्रैक्ट हो जाये तभी पता चले न कुछ।" और वह वहां से गुजरते कैंटीन के छोकरे को आवाज़ देने लगे, "ए सुनो, चाय का एक प्याला भिजवाओ यार।"

अव तक डायरेक्टर साहव भी उनके पास आ खड़े हुए थे। अनायास ही दीनू साहव कहने लगे, "क्यों शरद, तुम्हारी तवीयत तो अव ठीक है न ? पिछले दिनों खांसी थी। नहीं ठीक हुई हो तो मैं एक काढ़ा वताऊं पीने के लिए।

यह ऐसी वातें करते हैं तो कितना भला-भला-सा लगता है। एक हमदर्द वॉस की संरक्षणता कितनी सकून-भरी होती है। वह शब्दों वाले मृदु इंसानी स्पर्श में उलझ गया। वड़े चाव से जवाव दिया—

"विलकुल ठीक हूं अव तो।"

"अच्छा, ठीक है, परसों मिल रहे हो न। सेंसर के वाद सी० सी० जोड़ना है।" वह स्नेह-भरी लिपटने वाली मुस्कान से भरपूर थे।

उसने भी विछने वाली हंसी लिये ही कहा था, "जी हां और कोई काम ?"

"नहीं, वस ठीक है।" अवकी उन्होंने ज़रा लापरवाही से कहा और डायरेक्टर से वातें करने लगे।

तव वह सुरेश भाई से भी प्रिंट चेकिंग का काम लेने की वात पक्की करके ही आया था। संजय वह प्रिंट्स तैयार करने के लिए कुछ निर्देश दे रहा था।

उसे देखते ही बोला, "हम लोग तो एक हफ्ते बाद आउट-डोर के लिए शिमला जा रहे हैं न।"

"और कलर करेक्शन ?"

"हां, वह तो कुछ हो ही गयी है। और असली तो पांच-छः प्रिंट निकलने तक बिलकुल हो जायेगी।"

वह संजय के साथ ही विल्डिंग से बाहर आया था। बोला, "कहां चलना है ?"

"यार, इन दिनों एक जगह कोशिश कर रहा हूं। यहीं मार्केट के ऊपर आफिस है उन लोगों का। नेक्स्ट मंथ पिक्चर सेट पर जा रही है, शायद मुझे कैमरामैन ले लें। इतने दिनों से घिसट रहे हैं। अब कुछ बड़ी चीज़ होनी चाहिए।"

"हां, वह तो है। यहां कई बीस-बीस साल से फुंक रहे हैं और थर्ड असिस्टेंट ही रह गये हैं।

"मैं इस ढंग से नहीं सोचता। कई ऐसे भी तो हैं जो तिकड़म भिड़ाकर रातोंरात चांस पा गये हैं।"

"पर हम उनमें से कहां ! वे बड़े पहुंचे हुए लोग होते हैं। शराब और लड़की सप्लाई करने से लेकर जूता-पॉलिश और बॉस लोगों के घरों में मटन-मच्छी तक पकाना जानते हैं। हममें सारे आर्ट कहां ?"

"हां, यह तो है।" संजय के चेहरे की थकान और होंठों के कोनों के पास असमय ही खिच आयी झुर्रीदार लकीरें बड़ी निराशा का-सा माहौल बना रही थीं। पर आज उसकी आंखों में एक तेज चमक थी, "पता नहीं यार, इन दिनों यह बहुत महसूस हो रहा है कि आखीर में काम की कद्र होती है। मुझे लग रहा है—मुझे यह वाला चांस ज़रूर मिल जायेगा।"

"पर चांस मिले तो काम दिखायें न ! चांस मिलने तक आदमी बुड्ढा हो जाये तो !" उसके मन का गुवार दिमाग में चढ़ने लगा था।

वे उस जगह आ पहुंचे थे जहां फुटपाथ के पास हमेशा कूड़े के ढेर लगे रहते थे। बदबू से उसकी नाक भिन्ना गयी—"चलो यार, यहां से जल्दी गुज़रो।"

वे तेज़-तेज़ चलते उस जगह को पार कर गये। फिर मार्केट की विल्डिग तक पहुंचे ही थे कि धीरज दिखाई दिया।

"कहां थे ?" संजय ने पूछा।

"वस थ्री कॉयंस में वियर के लिए आया था," फिर दोनों से वोला, "चलो, एक राउंड और लगायें।"

उसकी आंखों के सामने 'कोल्ड वीयर अवेलेवल' की तख्ती लटक आयी थी।

"पर इस शरद से क्यों पूछ रहा हूं मैं। यह तो कतराता है इस चीज़ से।" धीरज ने ही फिर उसकी ओर संकेत कर कहा था।

"कतराता हूं वाइफ की वजह से। उसे यह विलकुल पसंद नहीं।"

"वाइफ ने कसम दी है क्या ? तो कसम टूटते क्या देर लगती है।" कहते ही फिर धीरज जल्दी ही आगे भी वढ़ने लगा, "अच्छा, चलूं मैं। लैव में काम है। भाई लोग इंतज़ार कर रहे होंगे।"

"अरे, यूं कहो न, वात कहकर ही खुश करना आता है। दोस्तों पर खर्चना नहीं जानते।"

"नहीं यार, याद आ गया, जल्दी पहुंचना है।"

धीरज चला गया तो संजय ने रहस्यमय फुसफुसाहट लिये कहा था, "एक वात वताऊं—ये आदमी कुछ गहरे चक्कर में हैं।"

"क्या मतलव ?"

"वस, कह रहा हूं न।" वह और संजय दीवार से सटकर छांह में आ खड़े हुए—"तुम्हें मैं आगाह करना चाहता हूं। इन लोगों से वचकर रहना। अव तो प्रिंट चेकिंग का ज़िम्मा तुम पर है न।"

"पर मतलव क्या है ?"

"अरे यार, जानते नहीं, ओवरसीज़ में फिल्में स्मगल करने का कितना ज़वरदस्त चक्कर चल रहा है।"

"हां, सुना तो है कुछ। वह न्यू आर्ट फिल्म वालों के यहां से प्रिंट गायव हुए। अजीव वात है—ये लोग दूसरे देशों में प्रिंट स्मगल कर कैसे लेते हैं ?"

"वह तो ऐसा भी होता है कि यहां की खास सब्जियां, फल जो

पास के देशों में प्लेन से भेजे जाते हैं—उन्हीं सब्जियों के टोकरों में प्रिंट भी छुपा दिये जाते हैं।"

"क्या गज़ब का तरीका है।"

"तरीके तो और भी बहुत-से हैं। पर तुम्हें बताना चाहता हूं यह बात कि ये लोग भी कुछ गड़बड़ करने वाले हैं।"

"क्या कमाल करते हो यार। ये तो अपने यूनिट के लोग हैं।"

"यही क्या, वह सी० के० जी० भी कुछ क़म नहीं। अपनी पिछली पिक्चर के प्रिंट खुद ही गायब कर स्मगल करवा दिये थे उन्होंने। और फिर भी बच निकले।

"हां, वह तो मुझे भी पता चला था। लेकिन ऐसी अफवाहों पर विश्वास नहीं। और ये लोग भी ऐसे चक्कर में हैं, यकीन नहीं होता।"

"खैर, छोड़ो इसे, यूंही बाइ द वे कह दिया। बस तुम्हें होशियार करना चाहता था।" संजय ने भी इस बात को यहीं खत्म कर देना चाहा, "अच्छा, तो मैं चलूं। मैंने कहा था न, यहीं ऊपर आफिस में मुझे काम है।"

संजय चला गया और वह यूंही बेमकसद मन लिये एयरकंडीशंड मार्केट के ग्राउंड-फ्लोर पर घूमता रहा। शॉप्स के बाहर ज़रीदार साड़ियां झिलमिलाती, छटाएं बिखेरती लटकी हुई लहरा रही थीं और साथ ही शो-केस में दपदपाती कास्ट्यूम-ज्यूलरी।

सारी चकाचौंध मचाने वाली चीजें—मंजु इनके लिए कितनी लालायित रहती है! और वह भी तो चाहता है कि मंजु की वार्डरोब अच्छी-अच्छी साड़ियों से भर दे। पर यहां तक क्या सोचना···उसके पास तो खाने और रहने जैसी ज़रूरतों तक की ठीक सुविधा नहीं है।

वह नैराश्य के गर्त में डूबने लगा—पहले भी किसी के लिए कुछ नहीं कर सका। घर से चले आने के बाद सोचता रहा कि मां को यहां बुला खूब आराम पहुंचायेगा। पर हुआ क्या?—वह प्रतीक्षा ही करता रह गया ऐसे दिन की।···कुछ अच्छी हालत होती तभी बुला उन्हें महारानी की तरह रखने का सपना पूरा करता न!···और

प्रतीक्षा का अंत कितना भयावह और ठंडा था।

मौत तार पर चिपकी एक सूचना मात्र बनकर आती है तो इंसान को उसकी भयंकर अवशता और उसके तृणवत होने की बात से भरा सब से बड़ा तमाचा मार जाती है—और उस भारी ठंडे तमाचे की मार से वह कई दिन सुन्न-सा हुआ घूमता रहा।

मां नहीं रही थी तो घर से जुड़ी मानसिक शृंखलाओं में से सबसे दृढ़ शृंखला छनाक से टूट गयी थी। उसने यह भी सोचा था कि वह इतना ऊंचा उठेगा कि पिताजी सिटपिटाकर रह जायें जो चिट्ठियों तक में उसे निकम्मा सिद्ध करने पर तुले हुए थे। पर अपने पुरुषार्थ का सिक्का जमाने की बातें तो बिखरती चली गयीं। लेकिन जब मंजु मिली तब अपने लिए उसका विश्वास महसूस करते हुए वह फिर से अपने प्रति विश्वस्त हो आया था।

वह खुशी से झूमती कहती थी, "सच, मैं ऐसा ही साथी पाना चाहती थी। पापा के सजेस्ट किये, रोब से भरे, मुंह अकड़ाये वह 'हप्प' से ऑफिसर मुझे बिलकुल पसंद नहीं आते थे।"

फिर वह कहती थी कि वह इसलिए भी उसे पसंद करती है कि आर्ट से संबंधित कैरीयर है उसका। वह इतना काबिल है। बहुत जल्दी तरक्की कर लेगा वगैरा-वगैरा···।

उसके लिए वह घर-भर से लड़ी थी। उसके ममी-पापा समझते थे कि वह एक बेज़िम्मेदार आदमी को चुन रही है। पर सब से बड़ी लाड़ली बेटी की मर्ज़ी के आगे उन्हें झुकना ही पड़ा···वह क्या ये सारी बातें भूल सकता है। और अब वह यूं अलग होना चाह रही है तो वह इसे महज़ वक्ती चीज़ मानेगा इसीलिए सहेगा भी। लेकिन वह अब उससे मिलने नहीं जायेगा। जिसे वह प्यार करता है उसके सामने थका-हारा और नहीं जा सकता।

पर वह किसी आंतरिक सहारे के लिए तरस भी रहा है। पिछले दिनों की बेतहाशा मेहनत और फिर इन कुछ लोगों की भीतरी नीतियां —कठोर सूखापन ही है चारों तरफ।

और उसे फिर से संजय की ही हिदायत याद आ गयी। क्या इस

बात में कुछ सच्चाई होगी भी ! इतना जरूर है कि वह भी कुछ दिनों से अनुभव तो कर ही रहा था कि धीरज, मनोचा और सुरेश भाई में कोई आपसी योजना का सिलसिला बन रहा है। कैंटीन में वे बैठे हों— वह जाये तो बात करते-करते चुप-से हो जाते हैं वे सब। पर बिना जाने कुछ भी ठीक-ठीक कैसे समझा जा सकता है।

वह मार्केट से बाहर आने लगा तो उसे अनिता की याद आयी थी। बहुत दिनों से वह दिखाई नहीं दी। मंजु गयी तो शुरू में उसी की बदौलत खाने की एकदम अनियमितता से बच गया था। एक-दो बार रात का खाना भी उसी के घर में खाया और अब कितने दिन हुए वह उससे मिला ही नहीं। पर अभी तो आफिस का टाइम खत्म नहीं हुआ होगा।

अनिता को चलने में देर हुई तो कुछ देर वहीं उसके रिसेप्शन डस्क के पास बैठ जायेगा। और मन में एक उत्साह लिये वह उससे मिलने चल दिया।

•
•

तारदेव चौक तक वे पैदल ही चलते आये थे और कहीं चलने के प्रोग्राम बनाते कई-कई जगहों पर मानसिक तौर पर घूमते रहे थे···रेशम भवन का टी सेंटर, मैरीन-ड्राइव के नये हाइवे के पार बिखरे समुद्र के नज़ारे दिखाता संगम रेस्तरां, कांचघर में बैठे सड़क पर कारों, बसों की लंबी कतारों को बिना उनकी आवाज़ के भागते देखने की जगह वाला क्रीड़ा-केंद्र या रेत में धंसे बांसों पर रखी छत के नीचे बना चौपाटी का चाट-पकौड़ी वाला बाज़ार···पर कोई जगह इस वक्त मन में नहीं जमी थी। फिर उसे यह भी लगा था कि अनिता की कहीं जाने की इच्छा ही नहीं है, "अच्छा, जो जगह तुम्हें सब से ज्यादा पसंद है वहीं चलो।"

उसने फिर पूछ लिया क्योंकि वह खुद जल्दी घर नहीं जाना चाह रहा था। "मुझे तो बंबई की ओर की एक ही जगह पसंद थी। पर वहां ढेरों ईंट-पत्थर की धूल जमने लगी। और अब इतनी बड़ी बिल्डिंगें

बन गयी हैं कि वहां बैठ खाली आसमान तक को देखना सिर दुखा देता है।"

"बूझ दूं, तुम कौनसी जगह कह रही हो!···मैं जब मंजु के पापा के डर से उसके घर न जाकर 'कैफे परेड' के बस-स्टॉप पर इंतज़ार करता था तो मंजु आकर वहीं सामने देखकर कुढ़ते हुए कहती थी कि हाय, हम यहां ऐसे क्यों नहीं घूम सकते!"

वह अनिता की ओर देख मज़े से मुस्कराया—"वहां जोड़ बांहें लिपटाये हवाखोरी करते थे न। मंजु को इस बात का बहुत शौक था।"

अनिता हंस दी, "मंजु को क्या हर टीन एजर को रहता है ऐसा शौक।"

"पर मंजु तब इक्कीस साल की थी—खैर, मैं कह रहा था इसीलिए बाद में डर थोड़ा कम हुआ तो हम नरीमन-पाइंट के समंदर में दूर तक चली गयी सड़क पर उसी तरह खूब घूमते थे।···क्यों, तुम भी उसी जगह की बात कर रही थीं न?"

हामी भरती हुई अनिता के उन खामोश होंठों की फीकी मुस्कान गहरी थी। फिर उसने ज़रा थके लहजे में कहा था, "चलो, स्टेशन की तरफ ही चलें।"

बंबई सेंट्रल-स्टेशन के नजदीक पहुंचते ही उसने बड़ी शिद्दत से महसूस किया कि वह अनिता से जल्दी अलग नहीं होना चाहता। चलो, वह भी गाड़ी का सफर ही करेगा। यह खिचाव-सा क्यों है अनिता के लिए! पिछले दिनों यही समझ पाया था कि वह उसे अपनी ही जमात की पाता है इसीलिए। जैसे इसके भीतर भी कोई आंतरिक लड़ाई चुपचाप चलती रहती है।

नज़दीक ही सर्विस करने की वजह से गाहे-बगाहे अनिता मिलने लगी तो वह उसे अलग ही रूप में पहचानने लगा था। और आज भी इस उदास-से, पर सिर उठाकर चलने वाले व्यक्तित्व को देखकर मन हो आया है कहने को कि 'क्यों खुद को जला रही हो! छोड़ो, भूल जाओ सारे किस्से को।'

और मन ही मन उससे यह वातचीत चलाते हुए अनजाने ही अनुभव करने लगता कि वे दोनों किसी काले समंदर को लांघ जाने के लिए एकसाथ हाथ-पैर पटक रहे हैं।

"चलो, तुम्हें घर तक छोड़ आऊं।" वहुत आत्मीयता उमड़ आयी थी उसके स्वरों में।

"वेकार वहां तक चलोगे। तुम्हें तो पहले माहिम पर ही उतरना है न।"

"नहीं, कोई जल्दी नहीं। मंजु अपने पापा के यहां ही है।"

"अच्छा, अव तक भी।"

"उसकी तवीयत ठीक नहीं।"

"अच्छा सुनो, घर जल्दी नहीं जाना चाहता। साथ दोगी। कहीं वाहर खाना खाया जाये।"

"सोचेंगे, इस भीड़ से तो निकलो।"

टिकट लेने के वाद वे सेंट्रल के लोकल स्टेशन की तरफ चल दिये। वह अंदर वाले पुल की रेलिंग के साथ-साथ चलने लगे। नीचे सेंट्रल के सारे प्लेटफार्म दिखाई दे रहे थे। सव से इधर वाले प्लेटफार्म पर खड़ी ट्रेन चलने ही वाली थी। लोगों और कुलियों की भागदौड़ मची थी।

उसे हंसी-सी आ गयी कि नीचे वहां शहर से भाग चलने की दौड़ है और वायीं तरफ मुड़ गये पुल को तय कर सीढ़ियां उतर उधर लोकल पकड़ेंगे तो शहर के भीतर ही चल रही दौड़ दिखाई देगी।

और उसे खयाल आया था कि वहुत-वहुत दिनों से वह इस शहर से वाहर ही नहीं गया। कभी तंगी तो कभी यह ध्यान कि यहां पीछे का काम छूटेगा। और सिलसिला टूटा तो फिर काम हाथ से निकल जाने का डर।

अचानक दूर नीचे उसकी निगाह चली गयी। उनकी फिलम का लंवा वैनर लगा है—जिस फ़िल्म को उसने तराशा है, डिव्वों में सहेजा है! एक गहरी आत्म-संतुष्टि का अनुभव गले तक भरभरा आया। पिक्चर रिलीज़ होगी, खूव धूम मचायेगी। उसका कहीं नाम न होगा,

पर क्या हुआ ! उसे तो अपना क्रिएटिव सेटिस्फैक्शन है न। उसके हाथों से ही ये रीलें गुज़री हैं जिनके सारे महत्त्वपूर्ण फ्रेम मन में रमे-से हुए हैं। दीनू साहब क्या नहीं समझते कि उसने कितनी जानमारी की है। ठीक है, किसी के सामने यह बात जतायेगा भी नहीं। बस इतना ही काफी है कि उसे निहायत मेहनती मान दीनू साहब अपने साथ ही रखें। और उसे चाहिए भी क्या !

जब उस चाल को छोड़ साफ-सुथरी बिल्डिंग का यह एक कमरे वाला फ्लैट लिया था तब संतुष्ट ही तो था उस सीमित आय वाले अपने काम से भी। उन दिनों मेहरोत्रा का असिस्टेंट था। और उनकी पिक्चर्ज़ लगातार फ्लाप किसी वजह से भी हुई हों, पर अचानक मेहरोत्रा जी को भी काम मिलना बंद हो गया और उन जैसे अनुभवी कुशल व्यक्ति पिटकर रह गये थे। उसे कह दिया था, 'कहीं और काम ढूंढ़ लो भाई। मेरे तो अपने ही घर में राशन तक नहीं···' इस तरह भयंकर बेकारी के दिन आ टपके थे। उन्हीं दिनों एसोसिएशन की सालाना मीटिंग थी। उसने निराशा और गुस्से की झोंक में अपना 'बैज' तक कूड़े में तोड़-मरोड़कर फेंक दिया था और मीटिंग में नहीं गया था खुद को और दूसरों को यह कहते हुए, 'क्या करना साली किसी एसोसिएशन का, जब काम मिलने में ही इतनी अड़चनें हों !'

और वह काम की तलाश में इधर से उधर दौड़ता फिर रहा था किसी डरे हुए और घबराये-से चूहे की तरह।

उन्हीं दिनों मकान का किराया देना अनियमित हुआ था। पर घर बदलकर वह घटिया जगह तो जा नहीं सकता था। प्रेस्टिज भी खड्डे में चली जायेगी और मंजु को भी कितना बुरा लगेगा ! कहां तो उसके दिमाग में एक बिलकुल ही अलग तस्वीर लहराती थी अपने पति की पोज़ीशन के बारे में। वह तो अपनी रिश्ते की सारी बहनों और सब सहेलियों पर भी रोब झाड़ती थी। वे सब सचमुच उसके रोब में थीं भी, क्योंकि वह उन्हें रिलीज़ से पहले ही लैब में फिल्में दिखा सकती थी और मंजु को स्वयं पर गुमान भी खूब था कि उसका पति ऐसा बढ़िया काम करता है, कुछ ही दिनों में खूब रुपया और नाम कमा सकता है।

हालांकि वह स्वयं खुशफहमियों की मस्ती से निकल चुका था, पर फिर भी वे दिन कुछ थे ही ऐसे कि आशाओं की कूद-फांद में उछलने में ही मज़ा आता था।

उस चाल को छोड़ते वक्त इस अनिता ने ही कहा था, "शरद जी, मुबारक! आपने तो खूब छुपाया। शादी होने के बाद अब चाल को छोड़ रहे हैं तब पता चला कि यह तो मंजूषा ही थी। हम तो उसे आपकी कोई कज़िन वगैरा समझते रहे।"

उस पड़ोस वाले परिचय में कभी अनिता के लिए खास आकर्षण नहीं बन पाया। शायद मंजूषा उससे ज्यादा खूबसूरत थी और उसकी देह दिल-दिमाग पर ऐसी सवार थी कि किसी और के बारे में ज्यादा सोचने की फ़ुरसत ही नहीं थी।

इतना अब भी याद है कि यह चौड़े बॉर्डर वाली साड़ी पहने, बाल खोले, खूब उन्मुक्त हंसी लिये सामने आती तो बंगाली उपन्यासों की नायिका-सी लगती। तब इसे नाटकों में अभिनय का शौक था। उसी के लिए कभी-कभी निमंत्रित भी कर जाती।—एक भली-भली-सी लड़की जिसे हीरोइन बनने का शौक था। यह तो काफी बाद में पता चला कि इसे नहीं इसके चाचा को ऐसा शौक था।

और प्लेटफार्म पर खड़े हुए अनिता की पुरानी खिलखिलाहटें याद करते हुए इस पल उसका चुप-चुप-सा रूप भी सहा नहीं जा रहा। मन हुआ कह दे, 'दुखी मत हो। प्यार में पायी असफलता से सारी ज़िंदगी खराब नहीं की जाती है।'

पर किन शब्दों का इस्तेमाल करे कि घटिया किस्म की तसल्ली देने वाला माहौल न बने। और वह बिना कुछ कहे भी अनिता की उदासी के बारे में ही सोच रहा था।

पर क्या वजह है कि उदास होते हुए भी अनिता का चेहरा डल नहीं लगता, और साथ ही वह सोच गया कि अनिता के चेहरे का सौंदर्य काफी कुछ उसके हर ढंग के गरिमामय भावों में ही है जभी तो शुरू में वह कोई असाधारण नहीं लगी थी; क्योंकि तब बच्चों-जैसी खिलखिल हंसी वाला भाव ही छाया देखता था उसके चेहरे पर।

पहली वार उसके जलते-तमतमाते भावों का रूप जाना था, जब वह एक दिन अचानक उसके यहां चली आयी थी। उसे खुशी हुई कि इत्तफाक से मंजु पड़ोस में गयी हुई है, क्योंकि इसने धड़ाधड़ वोलना शुरू कर दिया था—

"आपको किसने कहा है मुझे फिल्म में काम दिलाने के लिए ?"

वह हैरान रह गया, "क्यों, चाचाजी ने ही तो कहा था !"

"पर मैं कहना चाहती हूं कि कम से कम अव आप किसी को इस सिलसिले में घर का पता न दीजिए।"

"ठीक है।" उसे भी गुस्सा आ गया था, "मुझे क्या पड़ी है। चाचाजी ही मेरी जान खाये रहते थे। आपकी तस्वीरें भी उन्होंने ही दी थीं। यहां दिखाई तो इन लोगों को पसंद आ गयीं। तव मैंने आपके घर का पता डायरेक्टर साहव को दे दिया था।"

वह सचमुच ही खीझ गया था, "जो भी है आप इसके लिए अपने चाचाजी से लड़िए जाकर।"

"ओह, चाचाजी ने ही तो यह मुसीवत खड़ी की···खैर !" और फिर वह वाहर खड़ी चाचीजी को भी अंदर वुला लायी थी, जिन्होंने विनम्र अंदाज़ से वात खत्म करनी चाही, "छोड़ो, क्यों वुरा मनाते हो। इसने इसीलिए वात साफ करनी चाही कि आगे से यह झंझट खत्म हो। वरना और कई लोग चले आयेंगे हमारे घर में, खामखाह का झगड़ा मचेगा।"

उस दिन वह जान पाया कि चाची को विन मां-वाप की इस लड़की की खुशी का कितना ज्यादा ध्यान है।—और वह कहे विना रुक भी नहीं सका, "पर चाचाजी तो कहते थे कि आपको भी वहुत शौक है कि अनिता हीरोइन वने।"

"अव जाने दो सव वातों को। जो झूठा-ऊठा लगाते थे वह तो तुम पर ज़ोर डालने के लिए ही···अव मतलव यही है कि हमने तुम्हें जो तकलीफ दी वह इसलिए कि अव आगे से यह टंटा खत्म हो।"

उसके वाद ही अनिता उसके यहां जव-तव आने लगी थी। तभी उसे पता चला था किशोर और उसकी घनिष्ठता के वारे में, और यह

थी कि वह तो किशोर से विवाह करके बड़ी प्यारी-सी दुनिया बसाने के सपने में तल्लीन थी। शादी इसलिए नहीं हो पा रही थी कि किशोर की आर्थिक स्थिति बहुत गड़बड़ थी। और वह यह भी कहता था कि अपने छोटे भाई-बहनों को सेटल करवाये बिना वह स्वयं शादी नहीं कर सकता।

उसने एक बार फिर सोचा कि वह किशोर के बारे में कुछ कहे। पर चलो छोड़ो…और वैसे भी अब क्या कहे। दूर से धड़धड़ाती चली आ रही लोकल दीख गयी और उसने जल्दी से पूछ लिया था, "तो फिर बोलो, बाहर खाना खायेंगे ?"

"नहीं, बाहर जाने को मन नहीं।"

"तो रहने दो, कल सही यह प्रोग्राम।"

"अच्छा।"

"तो ठीक है। बस-स्टॉप पर ही मिल जाना साढ़े पांच बजे—तो पक्का न !"

"बिलकुल।"

फिर वे भीड़ की धक्का-मुक्की झेलते जैसे-तैसे डिब्बे में सवार हो गये।

गहरी होती रात के मनहूस अकेलेपन को भुला देने की गरज़ से ही वह धीरज के यहां पहुंचा था और उसकी सोहबत की विरासत में मिली 'कंट्री' को खूब छका था। खूब मस्ती से। क्योंकि घर में मंजु तो थी नहीं जो इसके लिए लड़ती-झगड़ती या रूठ जाती। दो-तीन अड्डों पर घूमने के बाद धीरज ने कहा था, "बड़ी मस्त जगह पर ले जाऊंगा। हर प्रांत की बढ़िया चीज़ें मिलती हैं वहां।"

नशे के बावजूद वह चौकन्ना हो गया, "कौन लड़कियां !…ओह, नो-नो, मेरी वाइफ इंतज़ार कर रही होगी।"

और वह घर आकर नशे की थकान में उस बिस्तर पर ढेर हो गया जिस पर मंजु नहीं थी।

सुबह उठा तो सिर बुरी तरह जकड़ा हुआ था, लेकिन काम पर जाना ही था। नहीं तो वे लोग बेकार शोर मचा देंगे कि उसी की

वजह से काम में देर हुई।

पर लैब पहुंचा तो मालूम हुआ कि प्रिंट अभी तैयार ही नहीं। दीनू साहब भी कहीं नहीं दिखे। आज सुबह भी उनके यहां मुंह-दिखाई वाली हाज़िरी नहीं दे पाया।

गलियारों की ट्यूब-लाइट्स वाली रोशनियों में घूमते हुए भी यहां के असली सांवले अंधेरे में चलने लगा हो जैसे—अचानक अजीब-सी घुटती बेमतलब निराशा घिर आयी। या सुबह वाला हैंगओवर फिर से पलट आया था। ऐसे में कमरों से उठकर फैली वह गंध···रीलों के टुकड़े जोड़ने वाले सोल्यूशन की तीखी तेज़ गंध के भभके नथुनों से टकराते यादें उकेर देते हैं···कितना अर्सा हुआ यहीं खट रहा है, सिर फोड़ रहा है। नासटैल्जिया-सा भी घुमड़ आया बीते हुए के लिए। चाहे तब भी अभाव ऐसे ही थे पर फिर भी कोई आशा-भरा विश्वास भी था, या कुछ ऐसा था ज़रूर जो अब नहीं रहा···इन्हीं विचारों में डोलता वह नीचे आया।

तभी सुरेश भाई और मनोचा उसके पीछे-पीछे आये थे। उन लोगों ने उसे लंच इकट्ठा खाने के लिए कहा।

लेकिन वह हैरान हुआ जब वे लोग एक वातानुकूलित बढ़िया रेस्तरां में लंच खिलाने ले आये। ज़ाहिर ही था कि यह दावत सुरेश भाई की तरफ से है।

"तुमसे एक बात करनी थी···अच्छा चलो, खाने के बाद ही करेंगे।" थोड़ी देर बाद सुरेश भाई ने कहा था।

यहां रोशनियां इतनी मद्धम थीं कि शक्ल की पहचान भी मुश्किल से हो सके। वे एक ज्यादा ही अंधेरे कोने में बैठे थे। उसे वातावरण रहस्य की झिल्लियों से मढ़ा हुआ लगने लगा। इतनी घबराहट देने वाली रहस्यमयता कि बात जानने की उत्सुकता को प्रश्रय देने का भी मन नहीं हुआ। उसने भी बात स्वीट-कॉर्न चिकन सूप की महिमा पर मोड़ दी थी।

खाना खत्म हुआ। सुरेश भाई ने घड़ी देखी। ढाई बजे तक उन्हें सेंसर-ऑफिस पहुंचना था। पर फिर भी कॉफ़ी का आर्डर दे दिया

उन्होंने। दो-चार क्षण अपने मेंहदी-लगे कत्थई वालों में उंगलियां घुमाते रहे। फिर एकाएक ही वड़े उत्साह में आ गये, "हमारे पास एक वंडर-फुल स्कीम है। तुम साथ दे दो तो ज़िंदगी-भर ऐश करेंगे।"

वह पथरीली ऐश-ट्रे पर सिगरेट की राख झाड़ता रहा चुपचाप।

"तुम्हें मालूम है, क्या आफर आयी है एक प्रिंट सप्लाई करने की ?" वह नाटकीय ढंग से और अपनी भारी-भरकम आवाज़ सहित एकवारगी ही छा जाने की तरतीव लिये वोले, "अस्सी हज़ार। हम वांटें तो कितना हिस्सा मिलेगा। ज़रा सोचो।"

वह ज़ोर से हो-हो कर हंस पड़े थे।

"तो स्मगलिंग की वात कर रहे हैं !" उसके दिमाग में गुस्से की गर्मी लपट-लपट कर जली थी।

सुरेश भाई शायद उसकी ज्वलंत मनःस्थिति ताड़ गये। लापरवाही से हंसते हुए वोले, "हां भाई, काम तो ऐसा हमने भी कभी नहीं किया। पर अव सोचा, अपनी कूड़ा ज़िंदगी से निकलने की तरकीव भिड़ा लें।"

"पर तरक्की अपने काम के वल पर भी हो सकती है। ऐसे धंधे···"

"हां-हां, तरक्की तो किस्मत की वात है।"

"पर यही है कि किस्मत के इंतज़ार में जहान से ही उठ जायें—यह क्या मालूम !"

फिर वह मनोचा की तरफ देख रहे थे, "तुम्हें याद है उन साहव का किस्सा, जिन्होंने व्लयू फिल्में वेच-वेचकर स्टूडियो खड़ा कर लिया। फिर मरे भी हैं तो कितनी इज़्ज़त की मौत। तव किसी ने यह तो नहीं कहा कि उसने नयी लड़कियों को लेकर व्लयू फिल्में वनायीं। फिर उन लड़कियों के हीरोइन वन जाने पर उन्हें व्लैक-मेल करने तक की भी नीचता की। उनकी अर्थी पर लोग ज़ार-ज़ार रोये थे। जय-जयकार मची थी उनकी···"

वह स्वयं को किसी घेरे में कसता महसूस करता गया—जैसे वे लोग उसे वच्चा मान, उसकी उंगली पकड़ दुनिया-भर की रंगवाज़ियां वांच रहे हों।

पर वे अब साफ़-साफ़ बात नहीं कह रहे थे तो वह भी चुप रहा। थोड़ी देर बाद सुरेश भाई बातों में समझा गये कि प्रिंट चेक करने वाला आदमी कितनी आसानी से प्रिंट गायब कर लेने का काम कर सकता है। रीलों के रोल कैसे बचाये जा सकते हैं। और अलग होते समय इतना ही कहा था, "खैर, सोचकर बता देना। सौ-पचास का नहीं, हज़ारों का मामला है।"

वह कोई मुंहतोड़ जवाब दे सकता था कि—वह लात मारता है हज़ारों पर! पर इन लोगों को सहन नहीं होगा। ये नहीं सह पायेंगे कि कोई अपने विचारों के मुकाबले हज़ारों को मिट्टी के बराबर कहने की हिम्मत कर सकता है। अपनी मॉरेलिटी उखड़ती जानने की वजह से एक जलन में ये उसके दुश्मन-से हो जायेंगे।

उनसे जल्दी से पीछा छुड़ा उसने चलने की सोची। और वहां से लौटते हुए भी यही सोचता रहा कि ऐसे कौन-से कारण हैं जो कल तक ठीक लगने वाले लोग भी खतरनाक स्कीमें लिये सामने आ जाते हैं। पर थोड़ी देर बाद ही उसने सोचना चाहा कि नहीं-नहीं, वे लोग खतरनाक नहीं। अपने-आप जेल के डर से भूल जायेंगे इस स्कीम को दो-चार रोज़ में ही।

वह लैब में चला आया और फिर इंतज़ार करता रहा अनिता से मिलने के समय का। अच्छा ही है जो आज अनिता का साथ तय है।

वरना आज तो इन लोगों की बातें सुनकर दिमागी हालत गिरी-गिरी-सी है। कोई तो अपना मिले जिससे औपचारिक या उलझन-भरी बातें न करनी पड़ें।—और घड़ी में पांच बजते ही वह अनिता के आफिस की ओर चल दिया था।

खाने के बाद वे जुहू-बीच पर निकल आये। उसने मंजु और अपने बीच चल रहे तनावों के बारे में थोड़ा-सा ज़िक्र ही अनिता से किया था तो यूं महसूस हुआ मानो किसी विषाद का बोझ दिल पर से सरक गया है।

और तब अनिता ने भी किशोर के बारे में कुछ खुलकर बात की थी। वह जान गया कि बेशक यह जताना चाहती है कि किशोर वाले प्रसंग को लेकर कोई कटुता नहीं है। लेकिन चेहरे के फीकेपन से तो समझा जा सकता है कि प्रतिहिंसा-भरी नफरत की कील दिल से उखाड़ भी दो तो भी उस कील की धमक वहां ठक-ठक बजती ही रहती है।

और उसे किशोर निहायत ज़लील आदमी लग रहा था। इतना ढोंगी और मक्कार भी कोई हो सकता है! अपनी प्रेमिका को भी ऐसी बात कोई कह सकता है। पर यह भी क्या कहा जा सकता है कि उसने सचमुच उसे प्रेमिका माना ही था।—और ऐसा इंसान है तो यह दलील भी दे देगा कि 'प्रेमिका के प्रति कैसी-कैसी भावनाएं होनी चाहिए—यह भी कौन-से शास्त्र में लिखा है?'

उसने कई बार अनिता और किशोर को एकसाथ देखा है। दोनों आपस में ऐसे खोये हुए रहते थे कि किशोर के जेनुइन होने पर ज़रा भी संदेह नहीं हो सकता था। लेकिन किशोर ने अपनी आकांक्षाओं की खातिर कितना स्वार्थी प्रस्ताव अनिता के सम्मुख रखा था—

उसने जिस विधुर सेठ से क़र्ज़ लिया था वह तीन बच्चों का बाप था। उसी अधेड़ से अनिता को शादी करने के लिए कहने लगा। यह भी कहा कि फिर बाद में उसे छोड़ देना। तब तक सेठ वह उधार लिये

रुपये के सबूत वाला कागज़ फाड़ चुका होगा।—और किशोर इसी तरह अनिता के सम्मुख खुद ही झूठा पड़ता रहा। 'प्लीज़, मुझे बचा लो' जैसे नपुंसक वाक्यों सहित!—यह सब सोच-सोचकर किशोर के प्रति गहरी नफरत मन में भर आयी थी।

और किशोर का वह पहले वाला गहरा अनुराग!—तो क्या उसका प्यार और उसकी चालाकी, दोनों ही चीज़ें अपनी-अपनी जगह सच हैं?

अचानक वह बुरी तरह झुंझला-सा गया। समुद्र की लहरों का शोर विचारधारा को बहुत उलझते ढंग से तीव्र बना रहा था। वह इधर-उधर देखने लगा।

दूर कहीं-कहीं लोग उनकी तरह ही बंगलों की दीवारों के करीब ही रेत पर बैठे थे जो हल्की चांदनी के बावजूद धब्बे-धब्बे-से दिख रहे थे। सामने दूर तट पर आते-जाते इक्का-दुक्का लोग ही नज़र आते। हवाएं और लहरें एक मिली-जुली गूंज से सुहानी रहस्यमयता का-सा माहौल बना जातीं। पर यूं वातावरण कितना जटिल-सा भी हो आया है। अनिता की तकलीफ जानता है। वह उसकी तकलीफ मिटा देना चाहता है। उसका दुख उसके भीतर भी किसी ज़ख्म की लकीर खींचता है—पर वह करे तो क्या!

अनिता मुट्ठी में रेत भरती और फिर धीरे-धीरे उसे ढुलका देती। अजब है यह लड़की। अकेलेपन की कठोर दीवारों से टकराती हुई भी खामोश है। इतनी तकलीफ-भरी बातें बताते हुए एक आंसू तक भी इसकी आंख से नहीं टपका। बस, एक उदास चुप्पी के अलावा और कुछ नहीं।

"किशोर ऐसा भी कर सकता है। मैं सोच भी नहीं सकता था।" अचानक वह फिर सहानुभूति वाला वाक्य दोहरा गया, "खैर, यह तो मालूम था कि तुम दोनों में कोई झगड़ा हुआ है। पर मैंने सोचा, वह अभी भी शादी के लिए नहीं मान रहा होगा और तुम्हें इसी से गुस्सा आया होगा।"

"ऐसा होता तो बात ही क्या थी!" अनिता का स्वर एकदम

ठंडा था—इतना कि उसका ठंडापन हवाओं की नर्मी-भरी नमकीनी से मिलकर मन में एक सिहरन-सी पैदा कर रहा था।

"पर किशोर ने आखिर इतने रुपये क़र्ज़ लिये ही क्यों?"

"बिज़नेस के लिए।"

"क्या बिज़नेस?"

"पार्टनरशिप वाले एक बिज़नेस में रुपया लगा दिया कि साहब एक्सपोर्ट-इंपोर्ट में लाखों कमायेंगे—और दुगुने रुपये वनाकर वहुत वड़े स्केल पर डिपार्टमेंट-स्टोर शुरू करेंगे। पर रुपया सारा गंवा दिया।"

"तुमने इतने रुपये के उधार का रिस्क लेने से मना नहीं किया?"

"क्या करती, उसकी एंवीशन मेरी एंवीशन वन जाती थी। उसी फाइनेंसर से एक वार मिली तो मैंने उसे भी कहा था कि किशोर एंवीशियस है। वहुत आगे वढ़ सकता है! पर मुझे क्या पता था कि एक दिन किशोर मुझे इसी आदमी से शादी करने को···" वात अधूरी छोड़ अनिता ने नफरत से होंठ सिकोड़ लिये थे।

"एक वात कहूं—उसकी प्रकृति ही ऐसी नीच होगी। तुम दुखी न वनो, वस। हमेशा उदास रहने से क्या···"

"मैं क्यों उदास रहूंगी हमेशा,"—अनिता तुनककर वोली थी, "मानती हूं, वड़ी काली रातें काटी हैं मैंने। रात-रात-भर रोते-रोते सिरदर्द से जागती रही हूं। पर यह सहना ही अच्छा था। किशोर के झूठे प्रेम के भ्रम से तो निकली।"

अनिता विखर-सी रही थी। अपना तमाम साहस दर्शाना चाहते हुए भी आवाज़ उसके गले में ऐसे धंस रही थी जैसे समुद्र की लहरें किसी गुफा में सिर पटकती दव रही हों।

पर अनिता को अव शायद रुकना भी नहीं था, "और मैं ऐसी त्यागिनी नहीं वनना चाहती कि उसकी खातिर वेमन की शादी कर लेती। खुद अकेली वरवाद होती रहूं ऐसी परोपकारी जीव मैं नहीं।"

अनिता के शब्दों का खरापन उसे झिंझोड़-सा गया। उसे याद है कि सारी तनख्वाह चाचा के हाथ में ही देती थी। त्याग-व्याग की वातों

से तो यह बेहद बोर हो चुकी होगी।

पर फिर भी यह वह बखूबी समझ रहा था कि अनिता इस आघात से भीतर ही बहुत टूट रही है। वह अब चुपचाप सुनसान आंखों से दूर उछलते ज्वार को देख रही थी···लहरों की लकीर जैसे पतली रस्सी की तरह ऐंठकर सारे समंदर को बांध लेना चाह रही हो।

उसे लगा, वे दोनों भी बड़ी मुश्किल से किसी नामालूम चीज़ से स्वयं को बांधे हुए हैं। वरना बिखर जाने का डर! या कुछ छिन जाने का डर! बेचैनी के इस स्तर पर वे दोनों एक ही हैं···अनिता से ऐसा संवेदनात्मक जुड़ाव पाते ही वह कह उठा, "ओफ, मैं भी बहुत परेशान हूं इन दिनों।"

"हां, मैं महसूस कर रही थी। बहुत खोयी-खोयी-सी हालत में ही देख रही हूं तुम्हें आजकल। अब तो सब कुछ तुमने बता ही दिया।"

"बस, कुछ मत पूछो। काम भी खास अच्छा नहीं चल रहा। और क्या कहूं, मंजु में कुछ मेच्योरिटी है ही नहीं। एकदम घबरा गयी है। और इधर क़र्ज़ भी बढ़ रहे हैं। कोई रास्ता नहीं ढूंढ़ पा रहा।"

"पर बात यह है कि मंजु भी क्या करे! तुम अपनी स्ट्रगल में व्यस्त रहते हो। वह अकेली घर में कुढ़ती रहती होगी। ऐसे में इंसान ऊट-पटांग भी बहुत कुछ सोच जाता है।"

"तो तुम मंजु की तरफदारी कर रही हो!"

"नहीं, एक फैक्ट बता रही हूं।" फिर अनिता के स्वरों में बेहद आत्मीयता की नरमी थी, "और उस बात के लिए परेशान मत होओ। वह अपने-आप ही आ जायेगी एक दिन। तुम लोग तो ज़रा कुछ दिन अलग होते ही यूंही बावरे-से हो जाते हो।" एक झेंप में उसे यूं महसूस हुआ मानो उसकी किसी कमजोरी को ऐन सामने रख दिया गया है। तभी अचानक अनिता ने पूछा था, "अरे, मैं पूछना ही भूल गयी। उस दिन कौन लड़की थी तुम्हारे साथ?"

"किस दिन?"

"मैंने बस में से देखा था। तुम लोग स्नैक-बार में जा रहे थे। बड़ी चिपक रही थी तुम्हारे साथ।"

"अच्छा, वह !" उसे सुनंदा की याद आ गयी थी और वह मुस्करा पड़ा, "वह तो लैब में एक ट्रायल देखने आयी थी तो···" फिर उसने अनिता के मज़ाक का जवाब पलटकर देना चाहा, "अच्छा ! चिपक रही थी ? वाह, ऐसा तुमने दूर से मार्क किया और हमें पास रहकर पता नहीं चला। सच है, तुम लड़कियां बड़ी घोखी होती हो।"

"क्या-क्या ?"

"यह लफ्ज़ मेरा नहीं मेरे एक दोस्त का है। घोखी मतलब···आ···मतलब बड़ी काइयां।"

"उंह !" अनिता ने गरदन झटक दी।

"ओह, सॉरी, मतलब बड़ी चालाक।"

अनिता हंस दी और फिर दूसरे ही क्षण उसकी हंसी बुझ-सी हो गयी।

"हंसो भई, हंसती हुई बड़ी अच्छी लगती हो।"

तब एक हल्की मुस्कराहट कौंधी थी उस चेहरे पर—और मानो उसे दोबारा से ध्यान आ गया था कि अनिता इधर बहुत अकेली हो गयी है। चाचा का घर छोड़ देने के बाद इन वर्षों ने अगर उसे दिमागी खुलापन दिया है तो वहां से अलग हो जाने की नीरवता भी दी है और अब यह किशोर···

पहले प्रसंग पर तो वह तब भी संबंधों के बारे में सोचता रहा था पर यह मानने को मन नहीं हुआ था कि संबंधों की नियति हमेशा ही ऐसी रही होती है। मज़े से रहने की तड़प क्यों मचती है इसलिए न कि कोई करीब के हों जिनके सामने अपने 'होने' को स्थापित कर सकें।

संबंधों की ज़रूरत भी कितनी बड़ी है। तो क्या इसकी कमी व इसकी बहुतायत में ही इंसान भीतर से उखड़ने लगता है—शायद ! तब भी इस पर बहुत सोचा था और आज फिर इसी समस्या को लेकर

उलझ गया है।

—और शायद इसी बेहद उलझने की ही कोई प्रतिक्रिया थी कि वह आज वाली वात भी कह गया जो दोपहर से अवचेतन में तो हर पल ही टिकी हुई थी। और जिसका खयाल आ जाते ही भारी-भरकम दवाव माथे में पाता था।

अनिता एकदम हैरान हो गयी, "प्रिंट गायब करना चाहते हैं वे लोग ? और वो भी तुम्हारी मदद से। छिः, यह सब तो वहुत बुरा है।"

"हां, है तो। इसीलिए तो मन और भी बुझ गया है।"

"पर जाने दो, सोचना क्या। तुम शामिल ही नहीं होगे तो डर ही क्या।"

"हां, शामिल तो नहीं होऊंगा। इस 'न शामिल' होने की ही तो सारी जद्दोजहद है।···खैर, हां जाने ही दो। मैंने वेकार तुम्हें भी परेशान कर दिया अपनी रामकहानी सुनाकर।"

"नहीं, ऐसी तो कोई वात नहीं। वस, सोच में पड़ गयी हूं कि कितने मोड़ आते रहते हैं जिंदगी में और निर्णय-अनिर्णय का संघर्ष देते रहते हैं···" वह कुछ न कहकर सिगरेट सुलगाने लगा।

वह भी चुप हो गयी थी। शायद सचमुच उसके आस-पास की जिंदगी पर ही सोच रही है—और कुछ ऐसा था भी तभी तो वह अचानक उसी की एक वात पर पहुंच गयी।

"कितनी सिगरेट पीते हो एक दिन में ?" वड़े हौले से पूछा था अनिता ने। यह हौलापन एक झोंकेदार अपनत्व दे गया।

"डिपेंड करता है। कड़की हुई तो वहुत कम। पर ऐसे में परेशानी की टेंशन कभी ज्यादा ही वढ़ जाये तो चार-पांच पैकेट तक भी हो जाते हैं।"

"एक वार मैंने भी टेंशन कम करने का यही तरीका सोचा था।"

"वत् !"

"हां, यही तो। पर फिर अच्छा नहीं लगा एक आदत का मोहताज वनना।"

"आदत का मोहताज वनने की वात ही तो इंसान होने का अहसास

देती है। वरना भावहीन पत्थर का देवता वनना है क्या ?"

"नहीं, वह वात नहीं।" फिर अनिता मुंह वनाते वोली थी, "हाय, वहुत कड़वा होता है धुआं—नहीं ?"

वह हंस दिया वेसाख्तगी से। वहुत मुद्दत के वाद एक उन्मुक्त उछाह में ख़ुद को सजीव-सा पाया।

"ओह," आस-पास घिर रहे सिगरेट के धुएं को जैसे हाथ के संकेत से पीछे धकेला था अनिता ने, "कौन-सी सिगरेट पीते हो ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"इसकी गंध !···यह वह है न···"

अनिता की अधूरी वात को पूरा करते हुए वह व्रांड का नाम झट से वता गया।

"यह व्रांड मुझे पसंद नहीं। इसकी गंध अव सही नहीं जाती।" तो अनिता पहले से ही जानती है ! पहचानती है इस व्रांड की गंध को। यही वाली कौन पीता होगा ?—वही किशोर !

उसने झट से अपनी सिगरेट फेंक दी—रेत की रुखाई में जिसका जलता-चमकता विंदु धीरे-धीरे धंस-सा गया था।

लहरों और हवाओं के शोर की गूंज थी···सर्र···सर्र अनिता की साड़ी का पल्लू लहरा-सा जाता। हाथ को, रेत में उलझाती, उठाकर गालों पर झुकी वालों की लटों को पीछे करती···एक आवाज़ फिज़ा में खन से घुल जाती। उसकी वांह में खनकती चूड़ियों की वेहद वारीक आवाज़···ये सारी आवाज़ें एक पुल-सा वना रही हैं···उसके होंठों पर धुएं की एक गंध चिपकी है। वही गंध किसी के होंठों से उतर अनिता के दिल पर चिपकी है—और पुल मज़वूत होता जा रहा है जिसे तोड़ देने की शक्ति शायद दोनों में नहीं···गंध, आवाज़ें और पुल···सन-सन कनपटियों पर कुछ वजने लगा था।

—और उसने देखा कि अनिता की आंखों की चमकती नमी आंसुओं में ढलक सकती है—वही कोई गंध उस पर छा रही है, क्या इसलिए !···गंध···आंसू···सनसनाहट···और उसने यकायक वड़ी नरमाई से अनिता का हाथ थाम लिया।

अनिता चौंकी। उसकी तरफ ज़रा-सा देखा और फिर निगाहें नीची कर लीं, बिना बोले चुपचाप।

उसे महसूस हो रहा था कि अनिता की सांसों में सिहरन है। उसकी नरम हथेली को थामे अपने में साहस जुटाने का कंपन पाता रहा। और उसने यकायक ही मानो अनजाने में ही उसे अपनी तरफ खींच लिया था। पर एकदम करीब होते ही पाया अनिता के जिस्म का ठंडापन।

और इसे उसका एक डर मानते हुए ही उसने अनिता को और भी संरक्षणता-भरे आवेश से बांहों में भर लेना चाहा। और अनिता कुनमुना-सी गयी थी। फिर भी अशक्त-सी, अस्वीकार देते हुए भी जैसे वह उसके बंधन से अलग न होना चाह रही हो।—और वह सब कुछ भुला अपने होंठों से उसके होंठों की नरमाहट टटोलने लगा था···

लेकिन फिर यह क्या हुआ था कि अनिता झटके से अलग हो गयी थी—"बस करो, प्ली ऽ ऽ ज़।"

"अनिता !···तुम्हें बुरा लगा ?"

इस अप्रत्याशित व्यवहार पर वह एकदम बुझ-सा गया था, "आई एम सॉरी।"

कई क्षण चुप्पी के—सिर्फ लहरों का शोर बहुत बुरी तरह खटकने लगा। और वह अनिता के गहन सामीप्य को अभी कुछ देर पहले के खास क्षणों में बिलकुल अपने में महसूस करने के बाद अब मानो अकारण ही खोने नहीं देना चाह रहा था।

उसने बेहद मुलायमियत से ब्लाउज़ के नीचे की उसकी खुली पीठ पर बांह रख दी थी—

"सुनो।"

"हूं।"

"मैं अपनी भावनाओं को शब्दों में नहीं कह सकता, पर तुमसे बहुत ही···"

"क्या करूं···आई लाइक यू सो मच।" उसने लव की जगह लाइक का इस्तेमाल सायास ही किया था क्योंकि उसे लगा कि 'आई

लव यू' वाला वाक्य वहुत पेटेंट हो चुका है।

पर फिर भी उसे लगा, मेच्योर वनने के भरसक प्रयत्नों के वावजूद आज वह ज़िंदगी में पहली वार इतना नर्वस है और किसी नौसिखिये प्रेमी की तरह वेवकूफ लग रहा है।

"......"

"तुम कुछ नहीं कहोगी," उसने फिर आवाज़ को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया था।

"मैं···मैं क्या कहूं···"

"पर मैंने इन पिछले क्षणों में तुम्हें जाना है—एकदम जान लिया है।"

"कुछ नहीं जाना है।" अनिता के स्वर में एक अजीव-सी तुर्शी थी, "जो भी तुमने जाना हो···" वह जैसे खुद को सिमेटने की-सी कोशिश कर रही हो, "पर इस सव से फायदा ही क्या ?"

"फायदा ?"

"ओह, नहीं, मेरा मतलव यह ठीक नहीं···मैं आज पहली वार खुद को ठीक से एक्सप्रेस भी नहीं कर पा रही। मतलव यह है···मैं क्यों नहीं जान पायी कि आखिर हमें इस मोड़ पर पहुंचना ही था। ओह, मैं पागल थी, इसे सीधी-सादी मित्रता मान रही थी···" अनिता उसकी तरफ देख नहीं रही पर उसके स्वरों की वेचैनी, जहां उसका अपना हाथ है वहां उसकी कमर में घुलता जा रहा लोच, भौंहों का आकंपन—सव वातें मानो कह रही हैं कि इस वक्त अनिता पूर्णतया उसी में तल्लीन है।

इतना सव महसूस करते-करते उसने मन में वहुत व्यग्रता लिये अनिता को वांहों में खींच लिया।

"डोंट···प्लीज़ शरद,···पहले ही वहुत अशांत हूं, अव और डिस्टर्व नहीं होना चाहती।"

वह एकदम हैरान हो गया और ठंडेपन से ही अनिता का सिर उसके सीने पर टिका रह गया। और उसकी वांहों का वंधन स्वयं ही ढीला पड़ गया था।

सोकर उठा तो झटके से पिछली रात की याद तेज़ धार की तरह दिल-दिमाग को काट गयी। यह क्या हो रहा है ! नहीं होना चाहिए ! वह अपनी पत्नी से भरपूर प्यार करता है। कोई जगह खाली हो तभी तो भरती है, पर यह खालीपन कब और कैसे अपना सुराख बना गया, पता भी नहीं चला !

विना शरीरों के एकाकार हुए भी किसी को विलकुल पा जाने और खुद को नितांत दे देने की अनुभूति कैसी होती है—इसे पिछली रात उन थोड़े-से क्षणों में पहली वार जाना था। जवकि वह हमेशा ऐसी अनुभूतियों को काल्पनिक और कोरी वकवास मानता आया है—और अव ये क्षण पाये हैं तो वह उन्हें समेट नहीं पायेगा ? क्यों नहीं ? पर कैसे ?

और अनिता तो यही चाहती है कि सारी वात को यहीं खत्म कर दिया जाये। उसके कुछ वाक्य वर्फानी मौसम में भी सिगरेट के धुएं की तरह छाती पर जम-से रहे हैं—'तुम मुझे सचमुच चाहते हो क्या ? ···पर कैसे मान लूं तुम्हें सच ?', 'और सच हो भी तो भरोसा कैसे करूं !" 'अपने-अपने सच को संभाले रखना क्या आसान रह गया है !'

—और तुम्हारे छूने से डरूंगी क्यों, और न ही अपने को सती-सावित्री दिखाने का ही शौक मुझे है। पर कुछ पल की खुशी पाने में अव दिलचस्पी ही नहीं रही।

—ओह, कैसी चुभन-जलन थी उस लहजे में, इन खुली वातों में,

यह तब उतना महसूस नहीं हुआ जितना कि अब हो रहा है।

और फिर अलग होते समय अनिता ने कहा था, "देखो, मुझे फिक्र रहेगी। मंजु आ जाये तो ज़रूर बता जाना।"

मंजु का नाम आते ही उसे लगा, जैसे ज़मीन की ठोस सख्ती पर खड़ा कर दिया गया हो—क्या यह मंजु का नाम इस वक्त जान-बूझकर बीच में लायी है? इन लड़कियों का कुछ भरोसा नहीं, पूरी उस्तादी कर जाती हैं। सारा समा ही बदल सकती हैं चुटकियों में। मंजु के प्रसंग से ही वह ग्लानि-सी महसूस कर गया था।

लेकिन अभी एक पूरा लंबा कामकाजी दिन फैला है आगे, रुपये-पैसे की शक्ल में दिनचर्या खड़ी है। मंजु···अनिता—मंजु का उसके प्रति विरक्त होना या अनिता की अस्वीकृति···यह सब ही भुला देना होगा अभी तो। और वह जल्दी ही घर से निकल पड़ा था। पहले एक पुरानी जगह से पैसे वसूलने थे।

उधार सब से ले चुका। सुरेश भाई से उधार लिये साठ रुपये अब तक नहीं दे सका। इस कंसर्न ने दो इंस्टालमेंट नहीं दीं। पिक्चर रिलीज़ हुए ज़माना हुआ। कल ही सड़कों पर इस पिक्चर के सौवां दिन मनाने के पोस्टर भी देखे थे। रुपये के लिए पहले भी बहुत तकाज़ा इसलिए नहीं कर सका कि दीनू साहब बुरा मना लेंगे। कहेंगे, 'तुमने चिल्लाबाज़ी करके प्रोड्यूसर से संबंध बिगड़वा दिये—वह अब सोचेगा, इस एडीटर के असिस्टेंट इतना तंग करते हैं तो इसे काम ही क्या देना।'

पर अब कोई चारा ही न था। खाने के लिए तो रुपये चाहिए न! —सातवें फ्लोर पर लिफ्ट से निकल घंटी का बटन दबाया तो एक उदास भय ने जकड़-सा लिया। बचपन की एक आदत झपाटे से मन में उग आयी थी···हनुमान चालीसा का पाठ बेख्याली में ही दोहरा गया···शायद बहुत बेहाली के क्षण ही होते हैं कि उजड़ी हुई आस्था की धूल भी चाटने लगता है मन।

पर दरवाज़ा खुलने पर पता चला कि प्रोड्यूसर साहब घर पर ही नहीं। उनका बेटा मिला। उसने बड़ी संजीदगी से परिस्थिति

वतायी, "हम तो खुद फंसे हुए हैं। सारा रुपया अटका है। ड्रिस्ट्रीव्यूटर ने वदमाशी की है।" कमरे की नयी डेकोरेशन को निहारते उसने इन सारी वातों को, चेहरे पर उनके प्रति विश्वास का लेप चढ़ाये सुना और ऑफर हुए ठंडे पानी के घूंटों के साथ गुटका।

—वाहर आकर गेट तक पहुंचने के लिए थोड़े नीचे वने कंपाउंड की ज़मीन की चढ़ाई चढ़ते सांस ऐसे फूल गयी मानो सचमुच की ही पहाड़ी चढ़ रहा है। वड़ी अवसाद-भरी तवीयत लिये ही लैव पहुंचा था। और वहां प्रिंट-करेक्शन का काम निवटाता रहा। कुल मिलाकर उसने स्वयं को अपने काम में ही झोंक दिया था।

पर इस तरह भी अपने अस्तित्व को ही कितने दिन तक भुलाये रहता। दो दिन वाद जेव टटोली तो पाया कि छः रुपये और कुछ रेज़गारी ही वची है। अपनी विवशता पर उसने खुद को इतना पिटा-पिटाया तो कभी भी महसूस नहीं किया था।

...कितने दिन हुए ? चार-पांच दिन। मंजु को फोन तक नहीं किया। शायद अनिता का कहना ही ठीक होगा। इतने दिन वह भी उसकी ओर से वेरुखाई नहीं सह सकेगी। पर हद है—जिसे वह इतनी अपनी मानता था उसी पत्नी के वारे में कोई निर्णयात्मक राय नहीं वना सकता।

लेकिन वह आये तो भी, न आये तो भी ! हर हालत में रुपये का इंतजाम तो करना ही होगा। पर कहां से ?—और उसे एक ही आदमी का ख्याल आया जिससे वह कुछ तो उम्मीद रख सकता था। वह संजय को लैव में तलाशने लगा था।

दूसरी सव जगह देख लेने के वाद सुपरवाइज़र के थियेटर में झांका। पर संजय वहां कहीं नहीं था। नेगेटिव-क्लीनिंग वाले केविन तक में भी देख लिया। प्रिंट तैयार करने वाले अंधेरे कमरों के गलियारों तक में चक्कर लगाता रहा, पर संजय कहीं न था।—तो क्या आउटडोर पर चला गया वह ? और उसे याद आ गया कि वह जाने के लिए अपने डिपार्टमेंट का सामान इकट्ठा करने में लगा हुआ होगा और संजय जा रहा है तो उसे खुद ही ज़रूरत होगी। उसके घर

जाकर भी उधार मांगना फिजूल है—थककर वह वहीं वैठ गया पर वहां की मद्धम लाल रोशनी निराशा को और भी सुस्त वना गयी और वह ऊपर लौट आया।

लौटते हुए गलियारे में लक्ष्मी की तस्वीर के नीचे वाली स्टील की अलमारी से कोहनी छू गयी थी···कोई ठंडा लोहा···वदन में किसी झुरझुरी की-सी लकीर खिच चली। फिलम संभालने वाली यह लॉक्ड अलमारी भी एक तमाशा वनी नज़र आ रही है और इसकी चावियां उन्हीं को सौंपी गयी हैं जो इसे तोड़ना चाहते हैं ?—स्थिति का विद्रूप एक वेचैनी भर गया।

और याद भी आया था कि कितनी तंगी की वजह से तो प्रिंट चेकिंग का काम पकड़ा। और अव इतना काम करना भी मुहाल कर दिया लोगों ने, कैसी-कैसी वातें सुझाकर—'कुछ रीलों को यूंही एन० जी० कहकर रिजेक्ट कर दिया करो। प्रिंट चेकिंग वाली कापी तो तुम्हारे हाथ में ही है। कुछ भी घपला कर सकते हो।'—'छिः, उन्हें मालूम तक नहीं, कितनी गिरावट है इस वेईमानी के ख्याल तक में भी। नमकहरामी कितनी गंदी चीज़···'

···वाहर आया तव तक भी किसी ताज़गी की चाह के लिए ही अपनी सांसों को घुटते हुए महसूस किया था। —पर ताज़गी कहां थी ! वह वाज़ार में वेमकसद-सा चला जा रहा था और चलते-चलते ही दिमाग ने फिर पल्टा खाया था···उसे अनिता से मिल लेना चाहिए। कम से कम मिलकर अपनी ओर से अच्छी तरह वात साफ़ कर लेनी चाहिए। कहीं उस रात की वजह से उसे वह कोई गलत-सा आदमी तो न समझे।

पर अनिता वहां थी कहां !—आफिस-टाइम खत्म हो चुका था। ···वह फव्वारे वाले चौक की तरफ चला आया। सड़क पार कर फव्वारे के पानी में झिलमिलाती वदलती हुई रोशनियां देखता हुआ सींगदाने की पुड़िया खरीदने लगा। और सींगदाने गपकता समंदर की दीवार के साथ फुटपाथ पर टहलने लगा था।

फिर वह खड़ा होकर दूर लहरों को छू-छूकर उड़ते, उन्मुक्त-

भरे उन सफेद परिंदों को देखने लगा। कई पल तक उनके हिलोरें लेते पंखों पर टकटकी लगाये रहा। फिर वह पूरी पांत कहीं उड़ चली थी—शायद कहीं लौट चली थी। सामने सूरज का गोला क्षितिज-रेखा से नीचे उतर रहा था···आधा उतरा तो जैसे कोई उल्टी नाव। और वे पक्तियां कौंध-सी गयीं—

पीले, लाल, जामुनी, नीले धब्बे
किसी क्षितिज के साथ जुड़े—और जहां,
कांच जड़ी बंद खिड़की के पीछे से देखा
—आग की नाव उलट गयी।

हां, आग की नाव यूं देखते ही देखते उलट जाती है। आग कहीं नही बचती। मन पर सवार होता ठंडा समंदर उसे निगल जाता है—उन्हीं पक्तियों के सहारे वह आया यह अहसास उसे झंझोड़ गया।

पहले जो पक्तियां देखता या याद आतीं उन्हें लिख लेता था—आदत हुआ करती थी कि मन की बात या कोई चुनीदा बात डायरी में लिख लेता पर पता नहीं कब छूट गयी यह आदत—कुछ याद नहीं। मंजु ने एक बार पुरानी रद्दी निकाली। पूछा था, ये कैसी डायरियां हैं?—तब उसे वे कूड़ा ही लगीं और मंजु ने भी कहा था कि 'फेंको जी इन्हें, क्या आलतू-फालतू चीजें जमा कर रखी हैं।'

तब तो सारे पन्ने फाड़ दिये थे। पर आज क्षितिज को देख किन्हीं पंक्तियों के लिए क्यों फिर उसके मन में मोह उपजा है। यों भी कुछ ऐसा है जो इन तीन दिनों में बदल-सा गया है। अनिता के साथ वाली वह चमकते समंदर-भरी रात ही जैसे याद दिला गयी कि उसकी ज़िंदगी उतनी भरी हुई नहीं जितना कि वह समझता रहा है। अजाने ही कहीं कोई सूराख हुआ है जिसे भरने के लिए वह किन्हीं संवेदनाओं की राख में ही कुछ टटोलता फिर रहा है।···शाम वाले चिरंतन अकेलेपन के साये फिर से मन में सांय-सांय कर उठे थे। वह धीरे-धीरे स्टॉप की ओर लौट आया।

नज़दीक से नहीं दूर से ही पहचान लिया था उसको। जाने क्यों चाहा भी था नजर बचा जाये। पर वह तो मिलना चाहता था न

उससे, तो अब !···पता नहीं क्या हुआ, दूर से बस-स्टॉप पर खड़ी अनिता को देखते, उसकी आकृति को पहचानते ही दिल में कुछ जकड़-सा गया था। एक-दो क्षण में ही कई लहरें मन में उठी थीं—वह एकदम खुश-सा हो आया, अपनी खुशी पर खीझा भी, फिर बाकी सारे तनाव छूट गये पल-भर में ही। बस, एक तनाव रह गया अनिता के सम्मुख होने का ही।

और वह अपने में यूं घिरा ही था कि अनिता ने भी उसे देख लिया। वह साथ खड़ी लड़की से बातें करती खिलखिला रही थी और देखते ही उसी मूड में दूर से हाथ हिलाकर 'हलो' का आभास दिया था। वह पास पहुंचा तो अनिता ने ही पूछा था, "घर जा रहे हैं ?"

उसने 'हां' में सिर हिला दिया। अपनी आफिस की साथिन मिस जोशी से परिचय करवाने के बाद वे दोनों फिर बातचीत में लग गयी थीं और वह देख रहा था कि अनिता इस वक्त बिलकुल उदास नहीं लग रही।···तो क्या इन दो दिनों में उसके साथ कुछ अच्छा घटित हुआ है ? क्या अच्छा हो सकता होगा ! तो क्या ज़िंदगी में किशोर वापस आ गया है ? उसे अनिता का यूं अचानक मिलना खुशनुमा नहीं फीका-फीका-सा लगने लगा।

एक कदम दूर की सड़क पर तेज़ भागती मोटरों का शोर दिमाग को ज़िर्र-ज़िर्र की ध्वनि से काट रहा था।···बस, वह अनिता के बारे में सोच रहा है और उससे संबंधित किसी बात को लेकर कुछ भी नहीं जान पा रहा।

उसकी सहेली की बस आ गयी। उसे जगह भी मिल गयी। वह चली गयी।

"आज आपका काम लैब में जल्दी खत्म हो गया ?"

"हां।"

इस औपचारिक वार्ता के बाद अब कोई कुछ नहीं कह रहा था। और अब जाकर दिमाग में चलती वह ज़िर्र-ज़िर्र भी थमी थी। अब वह सोच रहा था ज़रा ठंडे मन से—बड़ी बुरी बात है। उसे किशोर के वापस आ जाने से भी क्या ? उसे ईर्ष्या वाले ढंग पर सोचने का

कोई हक नहीं। उसका अनिता की जिंदगी में स्थान ही क्या है, या उसने ही अपनी जिंदगी में अनिता को कहां तक शामिल कर रखा है।—जान सकता है कोई ठीक रूप, बता सकता है इस संबंध का कोई नाम !—नाम ! संबंध नाम चाहते हैं···नाम ! नाम का लेबल ! —और तत्पल ही उसे अनिता नीची दृष्टि जमाये, अपनी सूती साड़ी और ढीली चोटी सहित एक मुरझायी-सी लड़की लगी थी और उसका दिमाग भन्ना गया था। वह फिर उसे समझ नहीं पा रहा था।

पर कुछ भी कह देने की बजाय वह आंखें फाड़ उस रुकी डबल-डेकर को देखता रहा—जिसमें तीन सवारियां ही बैठायी गयी थीं और अभी उनकी लाइन में आगे ढेरों लोग थे। क्या पता, शाम के इस वक्त आध घंटा और लग जाये और यकायक महसूस किया था कि वे क्यों बेवजह शाम बरबाद कर रहे हैं।···बस की इंतजार में एक घंटा रोज़ ही बरबाद हो सकता है, होता है। मशीन में फिट हुए पुर्ज़े की तरह सुबह से लेकर शाम तक मशीन के साथ ही गति में दौड़ना पड़ता है। दौड़ने में थकना, गिरना सब कुछ ही है। पर इस वक्त वह अपने पुर्ज़ेपन को बर्दाश्त नहीं कर सकता ! हरगिज़ नहीं।

"अनिता, चलो, बस बहुत देर से मिलेगी। हम टैक्सी पकड़ स्टेशन तक चलेंगे।"

"नहीं—मैं तो···"

"अब चलो न, मैं तुम्हें कहीं बाहर घूमने चलने के लिए थोड़े ही कह रहा हूं।"

अनिता ने एक झटकदार अंदाज़ से उसकी तरफ देखा था—तब उसे महसूस हुआ कि उसने अपनी आवाज़ में ज़रा ज्यादा ही अधिकार का प्रयोग किया है। लेकिन अनिता पर कुछ दूसरा ही असर हुआ था शायद। वह यह नहीं सह सकी कि वह उसे इतनी ही सकुचाई-सी लड़की समझे।

जभी शायद उसने निर्भीकता-भरी आंखें उस पर टिकाते हुए कहा था, "घूम भी लेंगे तो क्या ! उसके लिए थोड़ी कह रही थी। बस,

यही सोचा कि अब यहीं खड़े हैं तो और इंतजार कर लें···पर चलिए, यह भी ठीक रहेगा। स्टेशन से घर पहुंचना मेरे लिए भी ज्यादा आसान ही है।"

टैक्सी में बैठते ही उसने कह दिया था चर्चगेट ले चलने के लिए। और अनिता हैरानी से उसकी ओर देखती रह गयी—

"क्यों !···वहां से गाड़ी पकड़ेंगे ?"

"हां, वहां से आसानी रहेगी।" उसने लापरवाही से कहा था और खिड़की के बाहर देखने लगा। अनिता 'अच्छा' कहकर चुप रह गयी और वह इस बात के मज़े लेता रहा कि अनिता वहां से गाड़ी पकड़ने के लिए ना नहीं कह सकी और पता नहीं क्यों उसका जी गुनगुनाने को हो आया था। और फिर अचानक ही कुछ याद करते हुए कह गया, "अनिता, तुम्हारा गाना सुने बहुत दिन हो गये।"

"क्यों, क्या मिस करते हो मेरे गाने को ?"

"बहुत।"

अनिता जो पहले शोख-सी हो गयी थी अचानक ही गंभीर-सी भी हो आयी। तो क्या उसे 'बहुत' शब्द में इतनी मिठास नहीं आने देनी चाहिए थी। यह अनिता कितना डरने लगी है उससे—जैसे खुद को मन ही मन पाठ पढ़ा रही हो।—'मुझे बातचीत या खुलने की इस सीमा से···बस, इससे आगे नहीं बढ़ना।'

पर कुछ भी सोचने दो इसे। वह तो स्वयं को बहुत खुश महसूस कर रहा था। अभी दस मिनट लगेंगे पहुंचने में। ट्रैफिक है, रुक-रुक-कर चलने में ज्यादा वक्त भी लग सकता है। इतनी देर अनिता का इतना करीब का सान्निध्य ! कोई खुशबू-सी थी जो हवाओं में घुली जा रही थी। और वह शायरी के मूड में आ गया था।

"अच्छा, तुमने वह पंक्ति तो सुनी ही होगी—

'ना तुम मेरे, ना दिल मेरा, ना जाने-नातवां मेरी।'"

"हां···सुनने में मामूली है, पर सोचो तो काफी बड़ी बात है।" टैक्सी के इस एकांत में अनिता की तरफ से मिली मुस्कराहट ने उसे आश्वस्त-सा कर दिया था कि वह उस रात की वजह से उससे नाराज़

तो नहीं ही है।

"क्या बड़ी बात है ?" अनिता के चेहरे पर हवा से बिखरी जा रही लटों और उसकी आसमानी सफेद फूलों वाली साड़ी—माथे की आसमानी मैचिंग बिंदी को अपलक देखते हुए उसने पूछा था।

"यही है इसका मतलब कि सब कुछ तो नश्वर है, तो रोना क्या ?"

"अब दार्शनिक बनने की तैयारी है।"

"बिलकुल नहीं," अनिता जवाब देने के तेज़-तर्रार मूड में ही थी, "मैं प्यारी ज़िंदगी को, उस ज़िंदगी को जो लाखों खुशियों का वरदान देती है। यूं मुट्ठी में से नहीं फिसलने दूंगी।"

"क्यों, दर्शन का ज्ञान खुशी नहीं दे सकता ?"

"देता होगा। पर मेरे साथ ऐसा नहीं है। मुझे जीवन चाहिए—साक्षात् जीवन।"

"और उस दिन तुमने एकदम उल्टी बात कही थी। कहा था, क्षणों को जीने वाली बात तुम्हें धोखाधड़ी लगती है।"

अनिता सीधे उसकी ओर देख धीरे से मुस्करा दी—"ये दोनों बातें अलग हैं। इनकी तुलना भी क्यों ! खैर, जाने दो, क्षणों वाली बात ही करना चाहते हो तो यही कहूंगी कि क्षणों को ठहराने वाली एक बीच की स्थिति भी होती है और यह भी है कि क्षणों को जीना बहुत प्यारा है। और जो चीज़ जितनी प्यारी है उतनी ही खतरनाक भी …और सीधी-सी बात है। इन दिनों मेरी 'पल्स' और टेम्परेचर दोनों बहुत 'लो' रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए कोई खतरा तजवीज़ नहीं किया जा सकता—इट इज़ मेडिकल डिसएप्रूव्ड।"

वह खिलखिलायी थी, वह भी हंसा था। मन ही मन सोचा था। 'अनिता जान-बूझकर अजीब-सी बातें कर सारे प्रसंग को हल्का बना गयी है। खैर…'

और तभी महादेव जी के मंदिर के आगे से टैक्सी गुज़र रही थी।

"ओह, आज तो शनिवार है न ?"

"क्या हो गया है। सचमुच ही दार्शनिकों जैसी भुलक्कड़ हो गयी हो क्या ? आज तो शुक्रवार है।"

"अरे हां," उतावली-सी के वाद अनिता चैने न से फिर सीट के साथ टेक लगा ली थी, "शनिवार को मैं महादेव जी के मंदिर में आती हूं। उसके वाद ही घर जाती हूं।"

"अनिता !" वह चौंक-सा गया था, "आई नेवर न्यू, यू आर सो ···मेरा मतलव इतनी पुरानी तरह की हो।"

"क्यों, यहां आना पुराना वना देता है क्या ? पुराने-नये के जड़ मानदंड वना देना अच्छा नहीं।"

"पर ढोंगी व्यवस्थाओं को मानना खुला दिमाग रखने में एक अड़चन है ? नहीं ?"

"और अपवाद के लिए हरएक को ढोंगी नहीं कहा जा सकता। व्यवस्था को मानता ही कौन है। मैं सिर्फ मन की आस्था को मानती हूं।"

"तो वहां जाने की क्या ज़रूरत है ? मन में ही आस्था को पूजो।"

"ओपफोह, मैं कोई अंधविश्वासी नहीं हूं। मैं इस एक खास वातावरण को कभी-कभी जीना चाहती हूं। किसी व्यवस्था को नहीं।"

वह उससे खास सहमत नहीं हुआ था। फिर भी इस वातचीत में मज़ा आ रहा था। इसलिए वहुत गंभीरता से वहस करके अनिता की वातचीत की खनकती रवानगी को गायव नहीं करवाना चाहता था।

"वह तो ठीक है पर मुझे तुम्हारे इस शौक की जानकारी आज तक नहीं थी। इसलिए ताज्जुव हो रहा है।"

"वाह···इसे भी शौक कहेंगे क्या ?"

"तुम जैसी लड़की भी पुरानी वातों पर विश्वास करने लग जाये तो यही कहना होगा।"

"ओपफोह, इसमें नया-पुराना क्या ! जैम-सेशन में फ्लोर पर

डांस कर लेने या स्वतंत्र रहने वालों के लिए वहां जाने में मनाही क्या ? पता है, वहां मिनी पहनने वाली, आधुनिकतम दिखने वाल लड़कियां भी पहुंची होती हैं—एक्ज़ाम में पास होने या अच्छा पा पाने की मन्नत मांगने के लिए।"

"अच्छा, तुम किसलिए जाती हो ?" वह उसे छेड़ने के मूड में था।

"मैं···!" क्षणांतर में ही अनिता का चेहरा बदल-सा गया था। माथे पर सिकुड़न खिंच गयी थी। रंगत भी फीकी-सी हो गयी थी, "···बस, शांति खोजती हूं। जहां उसके पाने की झलक मिले वहीं चली जाती हूं। चाहे बाहर की हो या भीतर की हो—किसी व्यर्थ बेतहाशा भीड़ की चीखती-सी आवाज़ें तो मुझे रौंदती हैं। मैं पागल होने की हद तक बेचैन हो जाती हूं।"

न चाहते हुए भी सनसनाती खामोशी टैक्सी के भीतर मंडराने लगी है। —इस नीरवता को कैसे काटे ! और उसे कुछ सुझायी नहीं दिया था तो उसने एकदम अनिता का हाथ थाम लिया था।

और अनिता मौन है। नीम अंधेरे में उसके तराशे हुए नाक-नक्श को देखता रहा। उसकी चमकती आंखें और बुझा चेहरा···जैसे चिर-प्राचीन पीड़ा को किसी बुत में व्यक्त कर दिया गया हो—और वह बेवकूफ प्रशंसक की तरह पीड़ा की भी प्रशंसा कर रहा हो !··· अचानक ही लगा था कि वह पागलों की तरह चिल्ला देगा—

'अनिता, छोड़ो यह सारा अभिनय। हम सारा दिन ही तो अभिनय करते हैं। हम वही करते हैं जो कि लोग हमसे चाहते हैं। बस, सारा खेल खत्म कर खोल को तोड़ बाहर निकल आना ही संघर्ष का चरमोत्कर्ष है। तोड़ दो इस खोल को।···छिन्न-विच्छिन्न कर दो।···'

···पर किससे कह रहा है ये सब ? अनिता से कहना चाहता है या अपने से ही कह रहा है ?···ख्याल था किसी भी क्षण उसके हाथ से संलग्न अपना हाथ अनिता झटके से छुड़ा लेगी। —पर फिर वह जैसे किसी भी परिणाम की चिंता से बेखबर-सा था। तेज़ी से गुज़रती

जा रही सड़क की नीली रोशनियों के प्रकंपित प्रकाशपुंजों में किन्हीं दिव्य-से स्वप्नों की परछाइयां देख रहा है।

टैक्सी रुकी थी। उतरकर उसने पैसे चुकाये। इसके बाद ही उसे याद आ गया कि वह किसी स्वप्निल दुनिया में विचर रहा था जहां से अब बाहर पटक दिया गया है। पर फिर भी कैसी अजीब बात—अनिता के इस स्वप्नमय सान्निध्य में स्वयं को भूल गया। पिछले क्षणों में हर विकट समस्या मानो ओझल हो गयी।

—और अब! कोई तथ्य सिर पर आकर ठहर गया है। वे लोग ट्रेन के कंपार्टमेंट की भीड़ में चुपचाप बैठेंगे, वह अपने स्टेशन पर उतरेगा—और वे दोनों अलग हो जायेंगे।

पर अनिता को और क्या कहकर रोके? कहे भी तो कहां चलने को कहे? उसने बेध्यानी में पहले ही टैक्सी में रुपये फूंक दिये। बचे दो रुपये और पचहत्तर पैसे···वाह, उसके ठाठ-बाट देख कौन यकीन करेगा कि इतना तंगहाल है। पर वह आज विवशता के चरम पर बिलकुल ही लापरवाह-सा बन गया। मानो न हारने की ज़िद्द बिलकुल ही दिमाग पर चढ़ गयी थी—जो मन में आयेगा वही करेगा।

"थकान है, कहीं एक कप चाय पीना चाहता हूं। तुम रुक जाओ, कंपनी दे दो तो अकेले ट्रेन में बैठने की बोरियत से बच जाऊंगा।"

अनिता ठिठकी। कुछ सोचा और फिर थोड़े अलगाव से बोली, "चलिए, पांच-दस मिनट और देर सही।"

वे जिस ईरानी रेस्तरां में पहुंच सीढ़ियां चढ़ ऊपर वाले 'फेमिली-

सेक्शन' में जा बैठे थे, वह उन रेस्तराओं में से था जिनकी कुर्सियां-मेज़ दीवारों पर जड़े बड़े पुराने आइने और वहां टंगे हुए 'दि फाउंडेशन ऑफ रिलीजन इज़ वन' जैसे माटो—ये सारी सामग्रियां एक बार ऐसा महसूस करवा देती हैं कि उन्नीस सौ पचास के आस-पास का ही कोई ज़माना चल रहा है। जहां संतोष का धीमापन पैर पसारे आराम कर रहा है।

ऊपर दूसरे कोने में कोई पारसी परिवार ही बैठा था। और इस कोने के आस-पास कहीं कोई नहीं। चाय का आर्डर दे दिया गया तो अनिता ने सीधे ही कह दिया था, "आपसे एक बात कहूं—मैं इसलिए भी आपके साथ चली आयी कि आपसे कुछ कह सकूं।"

बावजूद इसके कि उसे अनिता का जानबूझकर 'आप' पर चले आना अखर गया था, वह मुस्कराता रहा—

"चलो, पहले तुम ही कहो, वैसे तो मुझे भी कुछ कहना था।"

"जो कुछ हो रहा है यह ठीक नहीं।"

"क्या ठीक नहीं ?"

"मैं···यही कहना चाहती थी कि अब यह मित्रता शायद ही निभे।"

"···तुमने उस शाम भी यही कहकर टाल दिया था कि दरअसल हम दोनों अपनी-अपनी बोरियत मिटाना चाहते हैं···हम बदसूरती से तंग आये सताये हुए इंसान हैं—जो खूबसूरती को किसी तरह भी हो, बस, पा लेने को झपट रहे हैं।"

"मैं अब भी यही कहूंगी···यही कि आप मंजु के लौट आने तक का समय गुज़ारना चाहते हैं, बस।—और यह भी कि घर और मंजु से जुड़ी दुनिया ही आपके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है तो क्यों व्यर्थ ही···"

उसने काफी हीन-सा महसूस किया स्वयं को—पर फिर किसी भी तरह ऐसा एहसास स्वीकार न करने की ज़िद्द-सी लिये बोला, "मानता हूं सतही तौर पर इस स्थिति को तुम यूंही देखोगी। पर बहुत-बहुत पहले से तुम्हें जानता हूं। सोचकर देखो तब भी हममें कितना अपनापन था।···सच तो यह है कि मंजु इस तरह कुछ देर को अलग न भी रही होती तब भी मैं खुद को व्यक्त कर देता—वह और मैं ऐसे दौर से

गुज़र रहे हैं कि पास हों तो तब भी बहुत बिखरेपन से अलग होते हैं…"

"शरद, प्लीज़, भावनाओं का पोस्टमार्टम मत करो।"

"पर तुम्हारे लिए बनी जिन भावनाओं का बयान किया है उनकी खूबसूरती के बीच तो यह पोस्टमार्टम शब्द जंचता नहीं।"

"ओफ्फ…च-च," अनिता जैसे पूरी स्थिति से ही हताश-सी हो गयी।

क्या खूब क्लाइमेक्स पर चाय आयी थी। वह अपनी बात समझाना ही चाहता था कि बेयरे के आते ही चुप्पी मार गया। वह चला गया तो फिर से शब्दों को ढूंढ़ने लगा था—

"…पर अब इतना ज़रूर है कि हमने एक-दूसरे की भावनाएं जान ली हैं।…और शायद इतना ही काफी होता है। अगर निर्णय लेने की गुंजायश न हो तो!"

सिगरेट का धुआं उगलता वह छत की ओर देखने लगा था और कुछ देर बाद बहुत धीमे से अनिता ही बोली—

"चाय पी लीजिए। ठंडी हो रही है।"

"पी लूंगा, ठंडी भी पी सकता हूं।"—और उसे खुद महसूस हुआ था कि उसकी आवाज़ में ज़रूरत से ज्यादा रुष्टता का भाव आ गया है। जो बचकाना लग सकता है—चलो लगने दो। क्या फ़र्क पड़ता है।

"नहीं, मेरा मतलब भी आरोप देने से तो नहीं था। बस यही कहना चाहती थी कि जब पूरा निर्णय ले नहीं सकते तो जिंदगी को और उलझाने से फायदा क्या!"

अनिता स्वयं किसी समझौते की शुरुआत कर रही है—यह महसूसते ही उसे हल्की संतुष्टि हुई थी।

उसे डर भी लगा था कि कहीं अपनी बात को समझा न पाये इसलिए शब्दों को सावधानी से बरतते हुए बोला था, "अच्छा, एक मिनट के लिए यह सब भूल जाओ। दरअसल मैं यही बात क्लीयर करना चाहता था…हम एक-दूसरे को बरसों से जानते हैं। इसलिए तुम्हें मुझे गलत नहीं समझना चाहिए।"

"मैंने गलत कब समझा ?"

"ओह-ओ, सुनो तो···मेरा मतलब है कि यह सिर्फ एक तड़प है। किसी बिलकुल अपने करीब के, अपने जैसे से अलग न होने की···"

अनिता को चुप आंखें झुकाये बैठे देख वह फिर उसी बात को दूसरे ढंग से दोहरा गया, "आई फील निअरर टु यू मैंटली···"

हालांकि इस बात को पूरी ईमानदारी से कहा था फिर भी उसे खुद आशंका थी कि यह कोई अधूरी-सी सच्चाई है। लेकिन फिर भी सच्चाई के निकट की बात कहना भी शायद काफी मायने रखता है, इन तमाम विघटित होती मनःस्थितियों के बीच।

अनिता झट से कहने लगी थी, "हां, मैं भी तो कुछ यही बात कहना चाह रही हूं। आई डिड नॉट मीन टु हर्ट यू···पर···"

"और···मैं भी पत्थर नहीं हूं शरद, पर क्या करूं। बस, यही कह सकती हूं कि कभी-कभी कितनी छोटी दिखने वाली बातें ही ज़िंदगी को उलट-पुलट कर जाती हैं।"

मेज़ पर रखे अनिता के हाथ की उंगलियां तक कांप-सी रही थीं जो उसकी नियंत्रित आवाज से मेल नहीं खाती थीं। और आंखें तो जैसे बिलकुल बेलरज़! और उसने चाहा था कि कह दे—हां, तुम पत्थर तो नहीं पर चट्टान ज़रूर हो। जो अपनी जगह से हिलायी न जा सके।

उसने कहा था इतना ही, "पर ज़िंदगी को उलट-पलट दो। सब कुछ आसान हो जायेगा।"

"कहना आसान होता है।"

"नहीं, तुम्हारी मुश्किल इतनी बड़ी तो नहीं। तुम एकदम स्वतंत्र लड़की हो। कोई भी मन-मुताबिक साथी ढूंढ़ ज़िंदगी को नये सिरे से शुरू कर सकती हो।" उसने कहा और कहते ही अपनी आदत के अनुसार दिमागी चित्र भी खिच गये। यह बिंब था एक फ्रेम में एक जोड़े की तस्वीर का। एक अनिता का चेहरा दूसरा कोई भी। उसका साथी कोई भी होगा पर वह तो नहीं होगा।

—और खुद ही वैसा सुझाव देते हुए जैसे उसने धूल फांकी हो, लेकिन फिर भी उसे ये सब कहना किसी तसल्ली की अनुभूति भी दे

गया है कि उसने जो कहा है बड़ा ही ठीक कहा है, कायदे से कहा है।

"मुश्किल को आसान कहते हो ?" और अनिता ने जलती हुई आंखों से उसकी तरफ देखा था, "तुम्हें ऐसा लगता होगा। पर मेरी प्रॉब्लम इतनी आसानी से सॉल्व होने वाली नहीं। किसी पुरुष को पा लेना—कोरी, अधिकारों की मुहर छपी गृहस्थी जमा लेना। इससे अगर मुश्किल हल हो जाती तो बात ही क्या थी।"

उसे लगा वह सिर्फ इन बातों को सुनकर ही किसी भंवरदार उलझन में धंसता जा रहा है।

"तो फिर हल क्या है ? यह हल नहीं तो मज़े से रहो। वह ज़िंदगी भी ठीक ही चलेगी। जितने चाहो उतने दोस्त बनाओ।"—और वह खुद हैरान हो गया कि आखिर उसके भीतर रोष क्यों उगता जा रहा है जो कुछ मन में आये कहता जा रहा है।

अनिता भी कुछ तैश में आ गयी थी, "आपको कुछ होश नहीं कि आप क्या-क्या कहे जा रहे हैं। खैर, कह लीजिए जो जी में आये। मैं भी अपनी बात बता देती हूं कि ये वैद्य के नुस्खों की तरह जो आप सलाहें बांट रहे हैं न, तो यह भी जान लीजिए कि नुस्खे सब जगह एक ही तरह हिट नहीं होते। कहीं-कहीं एकदम फ्लॉप होते हैं।"

और सचमुच उसे एक गहरी शर्मिंदगी-सी महसूस हुई। वह क्यों इतना कुछ कह गया। खामख़ाह अपनी नज़र से किसी दूसरे की ज़िंदगी को तोड़ने-मरोड़ने लगा !—अपनी ज़िंदगी के खाली होते जाने का एहसास क्या हुआ कि अनदेखी खुशी की तलाश में दूसरों की संवेदनाओं का भी ध्यान नहीं रख रहा !

पर अनिता मानो उसके अस्तित्व से भी बेखबर तीखे स्वरों में अपनी बात को खोल रही थी, "माफ कीजिएगा, मैं उस मिट्टी की भी नहीं बनी हूं कि 'शरीर, पुरुष और मैं' के अलावा दूसरा कुछ ख्याल न रहे। इंसान बनकर फिर हैवानी दिमाग पाने का मेरा कोई इरादा नहीं।—और यह भी कि सिर्फ़ सुविधाओं के शीशे वाले चश्मे चढ़ाकर भी मैंने पुरुष को पाने की बात कभी नहीं सोची। बिना किसी मांग के एक आदिम लड़की की तरह, एक सही संपूर्ण लड़की की तरह मैंने किसी

को चाहा है···और अब मैं सारी तिलमिलाहटों और विवशताओं—इन दोनों चीज़ों के चरम के बीच उस स्थिति पर हूं जहां सिर्फ़ व्यवस्था या समझौतों के ज़रिये भी किसी के साथ ज़िंदगी जी नहीं सकती।"

"मैं यह तो नहीं कहूंगा कि तुम एकदम गलत हो।" उसने जैसे उसे गलत कहने से जानबूझकर अपने को रोका हो, "पर इतना है कि तुम्हारी प्रॉब्लम काफी कुछ खुद ही घड़ी हुई है। मानो तुम अपने अकेलेपन से बातें करती रही हो।"

"बिलकुल नहीं, यह मेरी प्रॉब्लम ही नहीं—हर उस दिमाग की प्रॉब्लम है जो बंधे हुए घेरे से निकल चुका है पर अपने अनुरूप आस-पास कुछ भी नहीं पा रहा और अपने को कहीं न पाना ही उसकी यातना है।" अनिता ने शब्द ऐसे फेंके मानो तिलमिलाहट का सारा दंश भी उनमें खिच आया और फिर एक चुनौती-भरी मुस्कान देती बोली थी, "और तुमने मुझे गलत इसलिए कह दिया है कि अब मैं खुली बातें कह देने से तुम्हें बुरी लगने लगी हूं।"

"ओह, नेवर," उसने मानो चुनौती को स्वीकारा हो और वह जान-बूझकर काफी खुलकर हंसा था।

वह कुछ झटक देने के ढंग से बोली थी, "खैर, यह जगह ठीक नहीं है कि हम बेकार कभी न खत्म होने वाली बहस में पड़ जायें।"

सारी बात जैसे एक बेजान तटस्थता पर आ थमी हो। पर दिमाग में हलचल-सी कायम थी। वह फिर कह बैठा, "सुनो, कहीं तुम पाप-पुण्य के चक्कर में तो नहीं फंस रहीं।"

"उंह···अब क्या तुम भी यूं बातें नहीं कर रहे जैसे अपने से ही कह-सुन रहे हो!" अनिता ने गर्दन झटक दी थी, "···और फिर सिर्फ देह-भर की कसौटी पर पाप-पुण्य की गणना!···छी!"···"हां, मुझे यह जरूर लगता है कि पुण्य या इस किस्म की चीज वही हो सकती है जो बिना किसी को तकलीफ दिये अपने सच की कसौटी पर खरी उतरे।"

अब कुछ भी कहना, किसी छोर को थामने का प्रयास करना एकदम ही बेमानी लगने लगा था। बल्कि ऐसी घुटन महसूस हुई कि कोई

बिलकुल अलग बात करने की सख्त ज़रूरत महसूस की थी। सिगरेट ऐश-ट्रे में फेंकते उसने संदर्भहीन ढंग से पूछ लिया था—

"तुम्हें तो पहले ड्रामे में काम करने का बहुत शौक हुआ करता था न। उसका क्या हुआ ?"

"बस छूट गया तो छूट गया।"

"फिर से नया कर लो इस शौक को।"

"अभी इन दिनों तो इससे कोई फायदा नहीं। संवाद ही याद नहीं रख सकूंगी। फिर आजकल मैं बहुत थक जाती हूं। सारा दिन आफिस में जुटे रहने के बाद रिहर्सल करना मेरे बस की बात नहीं रही।"

फिर वह एक फीकी हंसी लिये बोली थी, "आपको अचानक कैसे ये सब याद आया। क्या यह भी कोई सलाहनुमा चीज़ दी है।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं।"

उसके व्यंग्य को टालने के लिए उसने भावहीन चेहरे की गंभीरता-सहित उत्तर दिया। और उसकी अपनी सोच में बरबस वे दिन सामने चले आये थे—सचमुच तब अनिता बड़ी अलमस्त रहने वाली लड़की थी। और वह उनके यहां जा बैठता। चाय के दौर चलते, गप्पबाज़ी के दौर चलते। तमाम अभावों के बावजूद भी जैसे किसी को कोई चिन्ता ही नहीं—किसी आने वाले कल की या तरक्की की, जद्दोजहद की। उस चाल में दो-तीन परिवार तो ऐसे घुले-मिले थे कि मिल बैठें तो अपनी सारी समस्याएं भूल जायें। शायद अभाव तब विकराल नहीं हुए थे।

पर उन दिनों अनिता इतनी करीब थी और इसका साथ सहज उपलब्ध-सी चीज़ लगता कि इसको लेकर ज्यादा कुछ सोचा नहीं और उन्हीं दिनों मंजु ज़िंदगी में आ गयी थी।···ओफ़, यही सबसे बड़ी खराबियत है···ये बाकी चीजें—पैसा-वैसा, तरक्की-वरक्की तो मेहनत या किस्मत से मिल सकती हैं पर सब से बुरी घटना शायद यही घटित होती है कि खुद को न पहचान सकना। वह शायद शुरू से ही अनिता के बहुत निकट था। वह इसके सम्मुख जो मन में आये कह सकता और किसी के सामने नहीं।

"क्या सोचने लग गये ?" अनिता के वाक्य ने उसे

को चाहा है···और अव मैं सारी तिलमिलाहटों और विवशताओं—इन दोनों चीज़ों के चरम के वीच उस स्थिति पर हूं जहां सिर्फ़ व्यवस्था या समझौतों के ज़रिये भी किसी के साथ ज़िंदगी जी नहीं सकती।"

"मैं यह तो नहीं कहूंगा कि तुम एकदम गलत हो।" उसने जैसे उसे गलत कहने से जानवूझकर अपने को रोका हो, "पर इतना है कि तुम्हारी प्रॉव्लम काफी कुछ खुद ही घड़ी हुई है। मानो तुम अपने अकेले-पन से वातें करती रही हो।"

"विलकुल नहीं, यह मेरी प्रॉव्लम ही नहीं—हर उस दिमाग की प्रॉव्लम है जो वंधे हुए घेरे से निकल चुका है पर अपने अनुरूप आस-पास कुछ भी नहीं पा रहा और अपने को कहीं न पाना ही उसकी यातना है।" अनिता ने शव्द ऐसे फेंके मानो तिलमिलाहट का सारा दंश भी उनमें खिंच आया और फिर एक चुनौती-भरी मुस्कान देती वोली थी, "और तुमने मुझे गलत इसलिए कह दिया है कि अव मैं खुली वातें कह देने से तुम्हें वुरी लगने लगी हूं।"

"ओह, नेवर," उसने मानो चुनौती को स्वीकारा हो और वह जान-वूझकर काफी खुलकर हंसा था।

वह कुछ झटक देने के ढंग से वोली थी, "खैर, यह जगह ठीक नहीं है कि हम वेकार कभी न खत्म होने वाली वहस में पड़ जायें।"

सारी वात जैसे एक वेजान तटस्थता पर आ थमी हो। पर दिमाग में हलचल-सी कायम थी। वह फिर कह वैठा, "सुनो, कहीं तुम पाप-पुण्य के चक्कर में तो नहीं फंस रहीं।"

"उंह···अव क्या तुम भी यूं वातें नहीं कर रहे जैसे अपने से ही कह-सुन रहे हो!" अनिता ने गर्दन झटक दी थी, "···और फिर सिर्फ देह-भर की कसौटी पर पाप-पुण्य की गणना!···छी!" ···"हां, मुझे यह जरूर लगता है कि पुण्य या इस किस्म की चीज़ वही हो सकती है जो विना किसी को तकलीफ दिये अपने सच की कसौटी पर खरी उतरे।"

अव कुछ भी कहना, किसी छोर को थामने का प्रयास करना एक-दम ही वेमानी लगने लगा था। वल्कि ऐसी घुटन महसूस हुई कि कोई

सुनना भी सुनने की शक्ति से बाहर हो रहा हो और जिनकी लय पर कई विचार स्वयं ही बुनते चले जा रहे हों।—वह किसी इंद्रजाल को नहीं तोड़ पायेगा।

उसके सारे तर्क कोई उत्तर नहीं पा सकेंगे। किसी शिला से टकराकर टूट-फूट जायेंगे। यह अनिता उस विकरालता का दंश पा चुकी है जिसका जहर तोड़ने का तंत्र ईजाद होना बाकी है। और अनिता तो जाने क्या कुछ है पर वह स्वयं को समझते हुए भी इस कदर उलझता जा रहा है कि ऐसा लग रहा है जैसे स्वयं को समझने की सामर्थ्य हाथ से फिसलती जा रही हो।

उसका दिमाग फटने-सा लगा···पर वह अनिता की बातों के विरुद्ध कुछ कहेगा, जरूर कहेगा। इसकी तकलीफ तो जैसे इसके सिर पर मंडराती इसे व्यथित रखती है। पर उसकी तकलीफ तो साक्षात् यूं सामने खड़ी है कि किसी भी पल दबोच टुकड़े-टुकड़े ही कर देगी। और यह जता रही है कि इसने मुसीबत को ज्यादा जाना है।

सीधे उसकी आंखों में नजर गड़ाये वह बोला था, "किशोर को माफ़ क्यों नहीं कर देतीं ? वह तुम्हें चाहता तो बेहद था। यह भी तो एक सचाई है।"

"ओफ, मैंने पहले भी कहा था न कि किसी भी तरह किसी चीज़ को बटोरकर बस सुख इकट्ठा करने में विश्वास नहीं···"

इस गर्वीले उत्तर ने उसके रोष में क्रूरता-सी भी जगा दी थी। अब उसने ऐसी चोट देनी चाही जिसके एक ही प्रहार से वह अपनी मानसिकता की भुरभुराहट साफ-साफ देख ले, "तो उस दिन तुम्हारा सच क्या था जब तुम सारी स्थिति से वाकिफ होते हुए भी, कुछ पलों के लिए ही सही, मुझमें एकदम तल्लीन हो गयी थीं।

—अनिता एक पल के लिए पत्थर-सी हो गयी। फिर एक बेजान मुस्कराहट लिये कह रही थी, "एक पल के बिखराव का असर ढहने की वजह तो नहीं बनना चाहिए न !" फिर अनिता का चेहरा किसी गंभीर आवेग की तीव्रता से थका हुआ लग रहा था।

"मैं···मैं शरीर यानी भौतिकता के ज़रिये संवेदना तक नहीं पहुंच

सकती। संवेदना शरीर तक पहुंचा दे तो अलग बात है। इसीलिए मैंने प्यार का जो चरम सच पाया था वह हमेशा मुझमें जीवित रहेगा।"

"तुम मुझे इतनी ही आउट आफ डेट लग रही हो जितना कि यह रेस्तरां।"

अनिता ने चौंककर उसकी तरफ देखा था—पराजित हुई-सी कैसी आहत दृष्टि थी! और इतना बड़ा प्रश्न है दृष्टि में कि जिसका शून्य उनके बीच कोई भूचाली दरार खींच गया है।

—और अब यही होगा कि यह एकदम चुप रहेगी। अब कभी कुछ भी कहना-सुनना नहीं चाहेगी···अभी कुछ देर बाद यह भी होगा कि वे ट्रेन पकड़ेंगे और फिर अलग हो जायेंगे···और किसी टूटती चीज़ का खयाल ही दिल में चुभकर कोई घाव-सा करने लगा था। कुछ टूट जाने की उदास यंत्रणा तो थी ही पर अपनी बिगड़ी हुई स्थितियां भी जैसे दोबारा से मन में चुभने लगी थीं।

"यह रील तो येलोइश हो गयी एकदम।"

साथ की कुर्सी पर बैठे प्रोजेक्शनिस्ट की आवाज़ ने उसे झंझोड़ा और वह हड़बड़ाकर कापी पर टार्च फेंकता संकेत लिखने लगा था—'बेकार है पर किसी छोटे शहर में भेजी जा सकती है।···' और आंखें फिर उनींदी-सी हो गयी थीं।

इन थकी आंखों को चैन भी तो नहीं। बार-बार खाली जेब ही सामने आ जाती है। इस वक्त क्या, इन दिनों तो हर वक्त खाली जेब का ध्यान ही जकड़े रहता। कुछ दिन पहले दिलोदिमाग अनिता पर ही

केंद्रित रहा था। पर जब वे एक शून्य तटस्थता पर आ पहुंचे थे तो जबरदस्ती मन को दूसरी ओर ठेल दिया था, लेकिन वहां थीं फिर वही परेशानियां।

उस शाम अनिता से अलग होने के बाद पिछले एक हफ्ते से लगातार अपनी मुसीबतों से ही तो जूझता रहा था।—इस चेकिंग वाले काम के पैसे भी सुरेश भाई जल्दी नहीं दिलवा रहे। क्या इसीलिए कि उस योजना की बात उनसे सुन लेने के बाद वह उनके सामने जाने से कतराने लगा है!—यही तो असली जूझना था।

आखिरी रील खत्म हुई तो पता चला था कि बाकी रीलें शाम को तैयार होंगी।—और वह अपनी समस्याओं में फुंकता ऊपरी मंजिल के बरामदे में आ खड़ा हुआ। रेलिंग के सहारे टिककर डिब्बी की आखिरी सिगरेट फूंकने लगा था।—चारों ओर से पड़ रहे दबाव! किसी घोर वीरानियत की धुंध पूरे दिमाग को ढांप-सा रही है।

और पहले तो वह हमेशा सोचा करता था कि कोई भी संघर्ष, कोई भी तकलीफ उसके दिमाग की ताजगी को नहीं छू सकती। तो क्यों सब गलत-सा होता जा रहा है—ऐसा बिलकुल नहीं होना चाहिए। उसका सिर घूमने-सा लगा।

●
●

"क्यों गुप्ता, कैसे हो?" सामने से चले आ रहे दीनू साहब उसे देख वहीं खड़े हो गये थे'

"...जी। बस, ठीक हूं।"

"क्या बात है, कुछ परेशान-से हो?"

"नहीं तो..." यूं वह अपनी परेशानी बता देने को आतुर-सा हो आया था, पर फिर भी कहा कुछ नहीं।

दीनू साहब ने वहीं खड़े होकर एक सिगरेट सुलगाते हुए फिर पूछ लिया था, "और क्या हाल-चाल हैं?"

और अब वह स्वयं को नहीं रोक पाया था, "क्या कहूं, बहुत मुसीबत में हूं इन दिनों। आप तो जानते ही हैं, इस काम के पैसे जल्दी

मिल नहीं रहे। बस, इसीलिए···"

"घबराओ नहीं, ऐसे घबराने से तो कुछ नहीं बनता।" साथ ही उन्होंने उसकी पीठ थपथपा दी। "देखो, मैं खुद कितने साल स्ट्रगल करता रहा। अब जाकर ढंग का काम हुआ। तुम कोशिश करते रहो। ज़रूर कामयाब होगे।"

दीनू साहब की स्नेहासिक्त थपथपाहट बड़ा साहस दे गयी। पर फिर यकायक ही दिमाग में कुछ उछला था—'कोशिश करते रहो' से क्या मतलब ! जब यहां यह काम है तो और कोशिश कहां करन है ? पर फिर दूसरे पल ही लगा कि इनका मतलब 'मेहनत करने की कोशिश' से होगा।

"आपके साथ लगा हूं···मेहनत से काम करने की ही कोशिश···"

"हां, यह तो है," वह जल्दी से बोले और फिर बड़े कोमल ढंग से कहने लगे, "काफी कमज़ोर हो गये हो। अपनी तबीयत का ध्यान रखा करो। लंच वगैरा तो लिया न ?"

उनकी ऐसी सहानुभूति ने अपने लिए ही आत्मदया उपजवा दी थी और उनके प्रति भी वह निहायत अपनापे से भर आया, "हां, लंच तो लिया।" फिर उसके स्वर रिरियाने की थर्राहट से भर गये थे, "सुनिए, आप, प्लीज, कुछ मदद करेंगे ! मैं यहां से मिलते ही लौटा दूंगा। कुछ रुपये···मांगने का बहुत अभ्यास होने के बावजूद अब तक भी सूली पर चढ़ा देने जैसे, ये मांगने वाले कुछ पल ही पसीना-पसीना कर देते थे। हालांकि सामने वाले को वह एक महानुभवी घिघियाने वाला भी लग सकता है जबकि ऐसे वक्तों में कितनी दिमागी खींचतान में उत्पीड़ित होता है—यह वही जानता था।

"आज ही एक पेमेंट-चेक कैश करवाया।" दीनू साहब ज्यादा न दे पाने की असमर्थता-भरा भाव जताते बोले, "कितने में काम चलेगा ?"

"जितने भी हों। वैसे पचास तो चाहिए ही थे कम से कम।"

उन्होंने अप्रत्याशित कृपा बिखेरते पांच दस के नोट उसे थमा दिये। वे कुछ देर बाद वहां से चले भी गये पर वह बुत-सा वहीं रेलिंग थामे खड़ा रहा। फिर रुपये जेब में आने की गरिमा मस्तिष्क को कुछ सजीव

करने लगी थी। यूं पाया जैसे दिन में ली गयी लंबी नींद के बाद उठा है। जिस आराम के बाद दिमाग तो चुस्त है पर बदन टूट-सा रहा है।

•
•

रात होने तक का वक्त किसी भी तरह काटना था। वह ऊपर वाले थियेटर तक आया। लाल बत्ती दरवाजे के ऊपर टिकी थी। किसी फिल्म के रशेज़ चल रहे होंगे। पता चला, उन्हीं साहब की फिल्म चल रही है जिनके यहां काम मिलने की बात वह लड़की सुनंदा कह रही थी।

वह अंदर जाकर पीछे वाली कतार में बैठ गया। लगभग प्राइवेट शो ही था। तभी एक गाना शुरू हो गया और इसी के साथ बतकहियां भी शुरू हुईं।

'कमाल है'—'दुहाई मचा दी'—'तुसी ग्रेट हो।' एक सिर सीट पर उछला था, 'वाह-वाह' कहता हुआ। वह पहचान गया इस म्यूज़िक डायरेक्टर को। यह अपने गानों के फिल्मीकरण को देखते समय इसी तरह मज़े लेता था।

इस पर उसे याद आ गया, पहले उसे समझ नहीं आता था कि रिलीज़ के बहुत पहले बातें कहां से उड़ती हैं! अब उसे पता है कि फिल्मों की अच्छाइयां-बुराइयां, कलाकारों को चढ़ाना-गिराना सब यहीं गढ़ा जाता है। लैब तो गढ़ है तमाम खबरों के प्रेषित होने का—हरएक की खबरें यहां सुनी जा सकती हैं।

गाना खत्म हुआ तो फिर सब गंभीरता से फिल्म देखने लगे। और करीब दस मिनट बाद कहानी के मोड़ पर जो मार-पीट आंड दृश्य शुरू हुए तो फिल्म पर से उसका ध्यान हट गया था।

अगली कतार में वह चिकना-चुपड़ा नया-नया हीरो बना लड़का भी बैठा था। काफी देर पहले उसने इसे रिकार्डिंग-रूम में डॉयलाग डबिंग के लिए बैठे देखा था। इस नामी डायरेक्टर को खुश करने को उनकी फिल्म देखने चला आया होगा।

वह धीमे से बातें कर रहा था फिर भी उस तक पहुंच रही थीं।

वह आदतन असिस्टेंट डायरेक्टर पर रोब झाड़ रहा था, "अरे···इस फिल्म के राइटर ने कहां से स्टोरी चुरायी, मैं बता सकता हूं।" फौरन एक क्लासिक का नाम उसने गिना दिया था—"चेखव के प्ले 'दि थ्री सिस्टर्ज़' का मेन आइडिया है।"—और साथ बैठे उस व्यक्ति ने यूं सिर हिलाया मानो सचमुच उसके ज्ञान का कायल हो गया है।

वह उनकी बातों को सोच गया। इस कहानी का दूर का संबंध भी नहीं लग रहा उस प्ले की सेंट्रल थीम से—और ये लोग किसी से कम न दिखें इसलिए कृतियों के नाम खूब रट लेते हैं बिना उन्हें पढ़े।

मन ही मन उस हीरो के प्रदर्शित ज्ञान का मज़ा लिया और तभी अचानक उसने देखा डायरेक्टर के दायीं ओर बैठी लड़की को।

वह उन पर झुकती उनके कान में कुछ कह रही थी और तब डायरेक्टर साहब ज़ोर से हंसे थे और लड़की स्वयं हंसते-हंसते बेहाल-सी उनके कंधे पर सिर झुका गयी थी। वही मज़ाक डायरेक्टर ने संगीत-निर्देशक को भी बताया होगा तो वह भी खूब ज़ोर से हंसा और फिर जिस ढंग से उसने डायरेक्टर की जांघ पर धौल जमाया था, उससे सहज ही समझ में आ सकता था कि कोई कितना सस्ता मज़ाक रहा होगा।

ये लड़कियां फ्री दिखने के लिए पता नहीं कैसे-कैसे जोक रटकर रखती हैं। कौन होगी! —और गौर से देखते ही एक आकृति उभरी थी सुनंदा की।

और फिर जाने क्यों वह शो खत्म होने से पहले ही वहां से उठ आया। पर जाये भी कहां, और कैंटीन में आ बैठा था।

छोकरे को बुला आमलेट और टोस्ट का आर्डर दिया था।—और फिर जिसे खाते हुए उसे मंजु के पापा की याद आ गयी थी।

उसके ससुर जी इस बात से भी कितने चिढ़ते हैं। मंजु से भी कह देते—अरे भई, आमलेट सुबह ही खाने की चीज़ है। यह क्या बेढंगी बात। सास जी भी हंस देतीं और मंजु कहती, 'पापा, इनका काम भी बेढंगा है। खाने की जगह आमलेट और आमलेट की जगह बटाटा बड़ा याद आता है इन्हें और इनके साथियों को भी।

और वह कुढ़ता रहता कि कमाल है, ससुर जी जैसे लोग इस बात

में भी अपने को इतना सुपीरियर और दूसरे को गंवारू मान लेते हैं और बताते हैं कि दूसरे को आमलेट खाने के वक्त की तमीज़ नहीं। खाने की चीज़ों के वक्त पर भी बुर्जुआ अनुशासन।

ससुर जी तो उसके कैरियर को लेकर भी यहां तक सोचते हैं कि इस बारे में भी वह झूठ बोलता है कि इस नौकरी में तरक्की देर से होती है। वह ऐसी सूरत बना लेते मानो वह तो अपने बचाव के लिए झूठ बोलेगा ही।

बस, अपने लिए पाये ऐसे अविश्वास भी तो कितना-कितना गिरा जाते हैं। सबकी नज़रों में फिज़ूल-सा बना हुआ रह जाने की बात ही कितना थका हुआ बना जाती है। ससुर जी के घर में कौड़ी की इज्ज़त नहीं रही उसकी।

पर इन क्षणों में मंजु और उसके घरवालों को भी क्या याद करना! उनसे संबंधित बातें थकान के सिवा देंगी भी क्या और यह तो वह सोच ही चुका है कि अब मंजु या उसके घर के लोगों के आगे झुकेगा नहीं।

और जाने फिर क्यों उसे सुरेश भाई वगैरा का खयाल आ गया था। कहीं उसे झुका ही न दें ये लोग। पर नहीं, ऐसा होगा नहीं। इस पल भी उसने जल्दी से इधर-उधर देख लिया—अच्छा है वे लोग कहीं दिखाई नहीं दे रहे। वह जल्दी से उठ भी गया और वहां से उठने के बाद वह इतना समय काटने के लिए बाहर निकल आया था।

वह बिल्डिंग से कुछ दूर ही पहुंचा था कि एक टैक्सी पास आ रुकी।

"नमस्ते, कहिए कहां जा रहे हैं?" सुनंदा की आवाज़ सुनायी दी थी और वह बुरी तरह चौंक गया था।

अचकचाकर सिर्फ अभिवादन का ही उत्तर दिया था।

"कहां जाना है आपको?"

"बस, यहीं कहीं घूमने निकला हूं।"

"तो आइए न, नज़दीक ही जा रही हूं। साथ ही चलें।" और सुनंदा ने टैक्सी का दरवाज़ा भी खोल दिया था। कुछ ऐसे निर्णयात्मक

ढंग से कि मना करने की गुंजाइश ही न बच रहे।

उसे असमंजस में खड़ा देख फिर वह झट से बोली थी, "प्लीज़, जल्दी बैठ जाइए न। क्या हो गया अगर साथ में ही चले चलेंगे तो ?"

"क्या मतलब ?"

"आप बैठिए तो। बाद में बातें कीजिएगा।"

वह हैरान-सा रह गया उसके व्यवहार की तमाम जल्दबाज़ी से ! पर फिर भी कुछ ऐसा था कि पता नहीं क्यों, न चाहते हुए भी वह स्वचालित ढंग से टैक्सी में जा बैठा।

और टैक्सी चली तो मानो वह बिलकुल सहज थी। ये सारी बातें रहस्यमयी-सी लगीं पर फिर कुछ क्षणों के बाद उसे भी लगने लगा कि वह वहम-भर था, वैसे सारी स्थिति में ही एक सहजता-सी है। —सुनंदा स्वयं ही बातचीत में तल्लीन हो गयी थी, शायद इसीलिए ऐसा महसूस हुआ।

वह अभी-अभी देखी फिल्म की अच्छाइयां-बुराइयां कहती जा रही थी। उसने जताया नहीं कि वह भी फिल्म देख रहा था। इस खयाल से कि क्या पता फिर यह नाराज़ होने लगे—'बुलाया क्यों नहीं ? मिले क्यों नहीं ?' वह इस सारे ब्योरे के झंझट से बचना चाहता था।

वह उसकी बातें ही सुनता रहा और उसे गौर से देखने के बाद सोच रहा था कि यह पहले जैसी बिलकुल सींक-सी नहीं रही।

दीनू साहब ने एक मशहूर डायरेक्टर से इसे मिलवाया था तो वह भी साथ में था। डायरेक्टर ने इससे यही कहा था—'एकदम सींक हो। मांस चढ़ाओ।' फिर जब खुले ढंग से यहां-वहां मांस चढ़ाने की बातें हुई थीं, तब उसने कसम खायी थी कि आगे से वह ऐसी मुलाकातों में शामिल ही न होगा जहां लड़कियों को काम दिलाने का ताल्लुक हो। इन्हीं बातों को दूसरे ढंग से भी कहा जा सकता था पर निहायत घटिया शब्दों का रस ज़बान पर चढ़ाये बिना जैसे खाना ही नहीं पचता ऐसे लोगों का।

ये ही बातें वह घर आकर मंजु को बताये बिना नहीं रह सका था और वह कैसे खी-खी करके हंस दी थी—"इसमें अजीब क्या है ! यह बिजनेस का खेल है, ऐसी बातें होंगी ही।" फिर एकदम से तुनक भी गयी, "और हमें ये गंदी वाली बातें मत सुनाया करो," फिर वह उल्लसित-सी हो हमेशा की तरह पूछने लगी थी कि 'आज लैब में ट्रायल शो देखने कौन-सा हीरो या हीरोइन आयी थी।'

"आपने थोड़ी देर पहले कहा था न कि लैब में फिर रात को काम है।" अचानक सुनंदा ने पूछा था ?

"आं···" वह चौंकता-सा बोला, "हां, जाना तो है।"

"पर ओह, मैं तो पूछना ही भूल गयी। आपको कहां उतरना था।

—और साथ ही जैसे उसे फिर से कुछ देर पहले की सारी बातें याद आ गयीं। सड़क पर आया, सुनंदा मिल गयी और फिर यह लगभग ज़बरदस्ती ही अपने साथ ले चली—'क्यों !' अचानक उस पर बहुत गुस्सा-सा आ गया कि आखिर किस अधिकार से उस पर आदेश जता गयी। और फिर एक रहस्यमय आवरण अपने व्यवहार पर ओढ़कर अब खिलखिला रही है, मुस्करा रही है।

और वह तेज़ी से कह गया था, "मैंने तो खासक हीं जाना ही नहीं था। एक रेस्तरां के मैनेजर अपने एक दोस्त के यहां शायद कैम्प-कॉर्नर तक हो आता। कुछ निश्चित था नहीं इसलिए टैक्सी दूसरी दिशा में भागी तो भी चलने दी, पर आपने अभी तक यह तो बताया ही नहीं कि किस खुशी में साथ ले आयी हैं।"

सुनंदा का चेहरा उसी पल सांवली राख-सा बन गया, "मैं···क्या बताऊं अब !" फिर वह एक ही सांस में कह गयी, "बस यूंही सोचा, आपको अपना घर तो दिखा दूं। अब तो हम यहीं पास ही प्रभादेवी में ही रहने लगे हैं न।"

वह उसकी तरफ न देख सामने देख रही थी और वह समझ गया था कि यह लड़की काफी कुछ छिपा रही है—और इसीलिए वह और भी चिढ़ उठा, "देखिए, आप ठीक बात नहीं बताना चाहतीं तो न सही।

पर मुझे तो फिज़ूल में इस ओर आना पड़ा।"

"फिज़ूल में क्यों ?" वह झट से बोली थी—"घर पर नहीं चलेंगे ?"

उन आंखों में कोई विषाद घुमड़ता नजर आया, पर साथ ही उस विषाद को चीरती यत्नपूर्वक खींची गयी मुस्कान भी।

—और उसने जैसे स्वयं को उस पूरी स्थिति से ग्रंतग्रंस्त होते हुए जाना था और कह दिया था, "हां चलो, तुम्हारी यही इच्छा है तो देख लेते हैं तुम्हारा नया घर।"

सड़क से एक गली में मुड़ टैक्सी उस बड़ी बिल्डिंग के सामने रुकी थी।

आगे चलती सुनंदा उत्साही कदमों से सीढ़ियां चढ़ रही थी।

दूसरी मंज़िल के एक फ्लैट के सामने रुक गयी। घंटी बजायी। फिर जैसे याद आ गया हो—'ओह, घर में तो कोई होगा ही नहीं।' और फिर बैग में से चाबी निकालने लगी थी।

घर के भीतर पहुंच कुछ पल ही ड्राइंग-रूम में बैठे होंगे कि सुनंदा उठ खड़ी हुई, "चाय पिओगे न ?"

"नहीं, रहने दो। क्या बेकार की तकलीफ..."

"मुझे भी तो पीनी है। आपका कोई खास लिहाज़ नहीं।" वह हंसी बिखेरती चली गयी थी।

गाढ़े रंग के पर्दों से ढंका साफ-सुथरा कमरा नीम ग्रंधेरे में घिरा था। उसे एक विश्रांति की-सी अनुभूति हुई।

और जाने क्यों उसे अनिता की याद आ गयी थी। यह क्या कि उसकी याद अचानक कभी भी कौंध जाती है !

और एक उबाल दिमाग को खौलाने लगा। कहीं जीवन के किसी स्तर पर ज़रा-सी भी कोमलता नहीं। कितने दिनों से वह सख्त ज़मीन पर पटका जा रहा है और आसपास है भुरभुरे कंकरों-भरी मिट्टी। मंजु पर भी भयंकर गुस्सा आ गया—देख लिया सब। आखिर पत्नी बनी थी वह उसकी। लाख लाड़ली सही अपने घर की पर यह भी क्या हुआ कि उसकी मुसीबतों को समझती तक नहीं !

तो क्या सचमुच शादी के मामले में भी गलत चुनाव किया है उसने। उसकी ज़िंदगी जैसी है वहां मंजु जैसी लड़कियों का कोई काम नहीं···वहां तो न हिल सकने वाली, सैकड़ों थपेड़े खाती कोई दृढ़-सी शिला चाहिए···सहने की भरपूर क्षमता वाली—और तब अनिता का चेहरा दमक-दमककर सामने घूमा था—'ओह, नहीं ! उसने तल्खी में भर सिगरेट पी लेनी चाहिए और माचिस की डिब्बी जेब में न पाने से वह भीतर किचन की ओर चला आया था।

सुनंदा ने कपड़े बदल हाथ-मुंह धो लिये थे। वह खुले बालों और थोड़ी सिलवटों वाले गरारे-कमीज में बड़ी घरेलू-सी लग रही थी।

"वो···माचिस।"—वह एकटक उसकी तरफ देखता रहा। गुलाबी कुरते कसाव पर चमकते बटनों वाली पट्टी—ऊपर का बटन खुला ही छूटा रह गया। इस लापरवाही वाली मुद्रा में वह बेहद मासूम-सी भी लग रही है।

और मासूमियत की बात सोचते ही फिर ध्यान आ गया उसके अजीब-से व्यवहार का। कोई लड़की यूं बातें बना साथ ले आये तो आदमी क्या समझेगा—क्या यह नहीं जानती ! ऐसी बच्ची भी नहीं।

वह मुस्कराकर माचिस पकड़ा रही थी और उसने पूछ लिया था, "देखो भई, यह ढंग अच्छा नहीं। तुमने अपनी बात नहीं बतायी। ···अच्छा, मैं ही गैस लगा लूं। तुम्हारा कोई मतलब रहा होगा।"

शैल्फ पर से प्याले-प्लेटें उठाती सुनंदा ने चौंककर देखा था। चेहरा फिर बुझ-सा गया था। लेकिन जल्दी ही एक सांस छोड़ मुस्कराते हुए,

वोली थी, "हूं ऽ…आपको टाला नहीं जा सकता। पर चलिए, ठीक है। मुझे यही साफ़गोई अच्छी लगती है।…वता दूं ? आप बुरा ना मनायें तो !…मुझे एक आदमी से पीछा छुड़ाना था। कम्वख्त ऐसा चिटक है…खैर, वह क्या वताऊं अव…लंवी कहानी है। मतलव यह कि आपने आज मेरी मदद की…सो थैंक यू।"

वात कुछ खुल गयी पर जैसे वह और भी उलझ गया और 'थैंक यू' वाले स्तर की औपचारिकता से थोड़ा-सा खीझ भी उठा।—तो यह उसका इस्तेमाल कर गयी। उसके अनजाने में ही।

पर वह ज्यादा गंभीरता से इसे ले ही क्यों ! अभी थोड़ी देर में यहां से चला ही जायेगा। लेकिन उतनी देर गुमसुम, वुद्धू-सा वना वैठा रहे क्या। चलो वह भी औपचारिक वार्ता ही चलायेगा।

"आपके भाई-वहन वगैरा कहां हैं ?"

"वे सव वूआ के पास कल्याण में हैं। पीछे मां की तवीयत ठीक नहीं थी न। इस घर में आने से पहले ही वीमार मां कल्याण चली गयी। छोटे वहन-भाई भी। मुझसे छोटी वाली वहन, वह सुमन है न—वह भी उन्हें सम्हालने के लिए वहां रह गयी।…ओफ, अव तो एक जगह से छत भी टपकती थी, वड़ा मुश्किल था मां का वहां रहना। हमें मकान वदलना ही था। मरम्मत कौन करवाता अव उस सड़े-से घर की।"

सुनंदा प्यालों में चाय डाल रही थी और वह उसकी कही वातों को सुनता उस वस्ती तक पहुंच गया था—खपरैलों वाली छतों के कच्चे फर्श के कमरे—जहां तक पहुंचने के लिए मछलियों, सड़े हुए अंडों की वदवू और ढेरों मच्छरों की भिन्नाहट झेलनी पड़ती थी।

एक-दो वार दीनू साहव के साथ गया भी तो सुनंदा का उस साथ वाली मेन रोड पर मिल जाना ही तय रहता था।

—ये सारे परिदृश्य खिंचे तो फिर से सुनंदा में दिलचस्पी हो आयी। हालांकि उसे सतही दया उमड़ाना अच्छा नहीं लगता। पर फिर भी इतना था कि सुनन्दा के व्यवहार के प्रति वना गुस्सा एकदम गायव हो गया था। वल्कि खयाल आ गया कि चलो जाने दो, उसका इस्तेमाल

किया भी है तो एक अच्छी वात के लिए ही न !—यह वेचारी किसी से वचना चाहती थी और वह इसमें सहायक वन गया। पर वात क्या रही होगी ?—जिज्ञासा पूरी तरह उस पर हावी हो गयी।

"पर मुझे विलकुल समझ नहीं आ रहा—आखिर वह आदमी था कौन ! और आपने मुझे इतना विश्वास के काविल कैसे समझ लिया कि मेरे साथ अकेली चली आयीं।"

पूरी वात न जान पाने की वेचैनी ने ही मानो ऐसा मज़ाक़ कर थोड़ा खुल जाने को वाध्य किया हो।

"ओफ़-ओ, कैसी वातें करते हैं।" सुनंदा ने एक स्वयं-अर्जित अधिकार वाली धड़कन से उसकी तरफ देखा था, "आप उन सबसे अलग हैं। इतने दिनों से मिल रही हूं। क्या मैं नहीं जानती कि आप लड़कियों को तंग करने वालों में नहीं हैं।"

वात कहते-कहते वह स्वयं ही झिझक गयी हो, कुछ इस तरह से गरदन झुका वोली थी—"अच्छा, चलिए, उधर कमरे में वैठें, चाय पियें, फिर आराम से वताऊंगी न सव।"

दो-तीन सिप के वाद प्याला हाथ में ही पकड़े वह कुछ सोचती हुई काफी गंभीर-सी हो आयी, "वात यह है—वह आदमी इन्हीं डायरेक्टर का काफी मुंहलगा है यानी दायां हाथ। डैडी ने इसे खामखाह ज्यादा ही सिर चढ़ा लिया। अव जव देखो साथ आने की मांग करता है। मैंने दूर से ही आपको देख लिया था। झट से आइडिया आया—कह दिया, मुझे इनके साथ एक जगह जाना है। आज किसी से काम के सिलसिले में मिलवायेंगे। तो अव यह है कि वुरा तो नहीं मनाया होगा उसने वरना ऐसा जल-भुन जाता कि क्या पता मेरे खिलाफ़ डायरेक्टर को भी भड़का देता। और जव तक काम शुरू न हो जाये इस कंपनी में तव तक मैं इस आदमी से दुश्मनी भी नहीं ले सकती।"

"और कहीं कुछ काम मिला ?"

"ऐसे तो दो-तीन जगह हैं। इन्हीं प्रोड्यूसर साहव ने मिलवाया है। कमीशन लेंगे। अच्छा ही है, अपना इंटरेस्ट रहेगा तो काम तो दिलवायेंगे।"

"हां, मैं खूब जानता हूं तुम्हारे बॉस के इस दायें हाथ को···"

वह फिर से पुरानी वात पर लौट आया और सुनंदा भी जल्दी से वोली थी, "हां, वही तो। पर डैडी ऐसे हैं कि सव जानते हुए भी उसे घर पर वुलाते हैं। आज जव पता था कि घर पर खुद होंगे भी नहीं फिर क्यों टाइम दे दिया उसे। अव वह तो ऐसे पीछे पड़ा···" सुनंदा की आवाज़ विवशता की खीभ से रुआंसी-सी हो आयी थी।

कमरे की सांवली मुलायम रोशनी में सुनंदा का चेहरा और भी दयनीय-सा लगने लगा। जैसे कोई सांत्वना पाने की प्रतीक्षा वहां मुद्दतों से ठहरी हुई हो और उसे धीरज की कही एक वात याद आयी थी—'यह जो लड़की सुनंदा घूमती है न उस लंवे, गंजे आदमी के साथ—यह उसका डैडी थोड़े ही है।'

'···तो क्या वे वातें सच हैं। तभी अपने डैडी का नाम लेते ही यह ऐसी वितृष्णात्मक हंसी हंसती है!' अचानक फिर उसे सुनंदा में वेहद दिलचस्पी हो आयी—और चुप-से कमरे में सारा वातावरण और भी रहस्यमय-सा वन आया हो।

"एक वात पूछना चाहता हूं।"

"पूछिए"—खाली प्याले के किनारों पर उंगलियां वजाती मुस्कराती वह मानो किसी भी वात का जवाव देने के लिए तैयार थी। कुछ यह भी महसूस हुआ कि खुद को व्यक्त कर देने के प्रत्याशित प्रसंग के खयाल से भावोत्तेजित-सी भी हो आयी है और वह पूछ ही वैठा था—

"डैडी का वरताव इतना अच्छा नहीं है···वह सचमुच आपके डैडी ही हैं?"

"हां।"

किसी से ऐसा प्रश्न करने पर कोई अपनी इज्ज़त खराव हुई समझ गुर्रा सकता है, पर वह सहज ढंग की ही दिख रही है। पर इससे वह सुनंदा के प्रति कुछ और भी आशंकित-सा हो उठा। —या तो वह झटके से अलग हो जाये इस पूरी जगह से—पर ऐसा करने में अव वह खुद को असमर्थ-सा पा रहा था।

प्याले एक कोने में सिमेट सुनंदा थकान की मुद्रा में पलंग पर आ बैठी थी। फिर कुछ सोचती हुई अचानक ही कहने लगी, "शरद जी, आपने इधर-उधर से ऐसी बात सुन ली है। कोई कुछ कह ले—सचमुच क्या फर्क पड़ता है, मेरी ज़िंदगी तो नहीं बदल सकती। मैंने जवानी की मस्ती कभी जानी ही नहीं। मस्त बचपन भी कभी पाया नहीं। जब होश आया तो पता चला मैं तो बहुत पहले ही जवानी पार कर चुकी हूं···'

उसने नहीं सोचा था कि अचानक वह यूं जाने क्या-क्या कहने लगेगी।

"मैं समझ नहीं रहा।"

"क्या होगा समझ के भी। चलो छोड़ो। फिर वह खुलकर हंसी थी—और बड़ा अजीब-सा आकर्षण था इस बेचैन हंसी में।

"शरद जी, मैं तो पता नहीं क्या-क्या बक देती हूं। पर पते की बात यह है कि आप एक बहुत अच्छे आदमी हैं। कम से कम मेरी ज़िंदगी में शरीफ आदमी कम ही आये हैं। इसलिए आपके लिए मन में इतनी इज्ज़त है कि क्या कहूं।"

वह बेसाख्ता ही इस लड़की के प्रति कृतज्ञता से भर उठा था। —बड़ी अच्छी है बेचारी, इंसान की कद्र करना जानती है।

और सुनंदा किसी सपनीली तरंग में बही-सी मानो अपने मन की तहें खोल रही थी, "एक और आदमी पहले मिला था। जिसके बारे में कह सकती हूं कि निहायत शरीफ। पर इतना कि शराफत की वजह से ही या कहना चाहिए किसी अजीब-से डर की वजह से ही जो होना चाहिए था वह नहीं हो सका···"

पलंग पर अधलेटी सुनंदा छत की ओर देखती ऐसे बोल रही थी जैसे उसका यह बताना किसी से कुछ कहना न हो बल्कि आत्मालाप हो।

"···उस वक्त हम करीब आ जाते तो सारी ज़िंदगी ही बदल जाती। पर ऐसा नहीं हुआ। वह बीमार पड़ गया। गाने लिखता था, कहीं चांस नहीं पा सका। बहुत हार गया और जानते हो फाके कर-करके, गंदी ज़हर-भरी चीज़ पीते-पीते उसकी अंतड़ियां ज़ख्मी हो गयीं

"हां, मैं खूब जानता हूं तुम्हारे बॉस के इस दायें हाथ को···"

वह फिर से पुरानी वात पर लौट आया और सुनंदा भी जल्दी से वोली थी, "हां, वही तो। पर डैडी ऐसे हैं कि सव जानते हुए भी उसे घर पर बुलाते हैं। आज जव पता था कि घर पर खुद होंगे भी नहीं फिर क्यों टाइम दे दिया उसे। अव वह तो ऐसे पीछे पड़ा···" सुनंदा की आवाज़ विवशता की खीझ से रुआंसी-सी हो आयी थी।

कमरे की सांवली मुलायम रोशनी में सुनंदा का चेहरा और भी दयनीय-सा लगने लगा। जैसे कोई सांत्वना पाने की प्रतीक्षा वहां मुद्दतों से ठहरी हुई हो और उसे वीरज की कही एक वात याद आयी थी— 'यह जो लड़की सुनंदा घूमती है न उस लंवे, गंजे आदमी के साथ— यह उसका डैडी थोड़े ही है।'

'···तो क्या वे वातें सच हैं। तभी अपने डैडी का नाम लेते ही यह ऐसी वितृष्णात्मक हंसी हंसती है!' अचानक फिर उसे सुनंदा में वेहद दिलचस्पी हो आयी—और चुप-से कमरे में सारा वातावरण और भी रहस्यमय-सा वन आया हो।

"एक वात पूछना चाहता हूं।"

"पूछिए" —खाली प्याले के किनारों पर उंगलियां वजाती मुस्कराती वह मानो किसी भी वात का जवाव देने के लिए तैयार थी। कुछ यह भी महसूस हुआ कि खुद को व्यक्त कर देने के प्रत्याशित प्रसंग के खयाल से भावोत्तेजित-सी भी हो आयी है और वह पूछ ही वैठा था—

"डैडी का वरताव इतना अच्छा नहीं है···वह सचमुच आपके डैडी ही हैं?"

"हां।"

किसी से ऐसा प्रश्न करने पर कोई अपनी इज्ज़त खराव हुई समझ गुर्रा सकता है, पर वह सहज ढंग की ही दिख रही है। पर इससे वह सुनंदा के प्रति कुछ और भी आशंकित-सा हो उठा। —या तो वह झटके से अलग हो जाये इस पूरी जगह से—पर ऐसा करने में अव वह खुद को असमर्थ-सा पा रहा था।

प्याले एक कोने में सिमेट सुनंदा थकान की मुद्रा में पलंग पर आ
ठी थी। फिर कुछ सोचती हुई अचानक ही कहने लगी, "शरद जी,
ापने इधर-उधर से ऐसी बात सुन ली है। कोई कुछ कह ले—सचमुच
या फर्क पड़ता है, मेरी ज़िंदगी तो नहीं बदल सकती। मैंने जवानी
ी मस्ती कभी जानी ही नहीं। मस्त बचपन भी कभी पाया नहीं।
त्रब होश आया तो पता चला मैं तो बहुत पहले ही जवानी पार कर
चुकी हूं...'

उसने नहीं सोचा था कि अचानक वह यूं जाने क्या-क्या कहने
लगेगी।

"मैं समझ नहीं रहा।"

"क्या होगा समझ के भी। चलो छोड़ो। फिर वह खुलकर हंसी
थी—और बड़ा अजीब-सा आकर्षण था इस बेचैन हंसी में।

"शरद जी, मैं तो पता नहीं क्या-क्या बक देती हूं। पर पते की
बात यह है कि आप एक बहुत अच्छे आदमी हैं। कम से कम मेरी
ज़िंदगी में शरीफ आदमी कम ही आये हैं। इसलिए आपके लिए मन
में इतनी इज्ज़त है कि क्या कहूं।"

वह बेसाख्ता ही इस लड़की के प्रति कृतज्ञता से भर उठा था।
—बड़ी अच्छी है बेचारी, इंसान की कद्र करना जानती है।

और सुनंदा किसी सपनीली तरंग में वही-सी मानो अपने मन की
तहें खोल रही थी, "एक और आदमी पहले मिला था। जिसके बारे
में कह सकती हूं कि निहायत शरीफ। पर इतना कि शराफत की
वजह से ही या कहना चाहिए किसी अजीब-से डर की वजह से ही जो
होना चाहिए था वह नहीं हो सका..."

पलंग पर अधलेटी सुनंदा छत की ओर देखती ऐसे बोल रही थी
जैसे उसका यह बताना किसी से कुछ कहना न हो बल्कि आत्मालाप हो।

"...उस वक्त हम करीब आ जाते तो सारी ज़िंदगी ही बदल
जाती। पर ऐसा नहीं हुआ। वह बीमार पड़ गया। गाने लिखता था,
कहीं चांस नहीं पा सका। बहुत हार गया और जानते हो फाके कर-
करके, गंदी ज़हर-भरी चीज़ पीते-पीते उसकी अंतड़ियां ज़ख्मी हो गयीं

थीं और सीना खोखला।"

"तो क्या हुआ था उसे···?" अब उसके लिए सुनंदा के जीवन की लपेट में न आना असंभव ही हो गया था।

"टी० बी०···तब वह मेरे से मिलता नहीं था।···और पता नहीं क्यों, कैसा डर लग जाता है कभी-कभी···मैं भी उससे मिलने से डरने लगी, वह अपने गांव चला गया। ओफ़···देखो न, कैसे याद आ जाती हैं सब बातें···कैसे बात उठी और मैं सब बता गयी।"

सुनंदा की आवाज़ रुंध चली थी। उसके लिए एक बड़ी ही गूढ़ करुणा स्वयं के हृदय में व्यापती चली गयी।—सुनंदा की आंखें सूखी भी हैं और गीली भी। उसे भरपूर सहानुभूति देने की गहरी आवश्यकता महसूस हुई थी।

पलंग के किनारे पड़ी सुनंदा की हथेली को थपथपा दिया, "मुझे नहीं मालूम था। सचमुच यह तो बहुत दुख-भरी बात बतायी तुमने।"

सुनंदा ने अपनी बांह पर रखा उसका हाथ झट से माथे पर लगा लिया—और जैसे किसी पश्चात्ताप की याद में सिर हिलाया हो। और यह सारा ढंग किसी छोटी-सी लड़की के ठुनकने जैसा भी था कुछ।

उसे यह सारा व्यवहार कुछ असंतुलित-सा भी लग रहा था और एक खयाल आया था कि उठकर चल दे। वह किसी की गमगीन दास्तान सुन भी ले पर कुछ मदद तो नहीं कर सकता। पर फिर भी एक गहरी तड़प यूं भी थी कि इन क्षणों में, ये जो क्षण बड़े मनहूस-से हो उठे हैं इनमें उन दोनों को ही एक-दूसरे की बहुत बड़ी ज़रूरत है···उसकी उंगलियां उसके बिखरे बालों में उलझ गयी थीं—

"तुम्हारे बाल बहुत अच्छे हैं।"

"सच?" सुनंदा ने एक झटकेदार चमकीले ढंग से उसकी तरफ देखा था।

"सच, सब-कुछ सच। तुम बहुत-बहुत अच्छी हो।" आगे बढ़कर उसने उसके लहरियेदार बालों को चूम लिया—जैसे इस स्पर्श की छुअन से सारी मनहूसियत को एक कण की तरह ही विलीन कर देना चाहता हो।

—और वह एकदम सुनंदा के पास ही आ बैठा था।

"यह क्या ?" —पर साथ ही वह मुस्करा भी रही थी।

"कुछ नहीं।" वह यकायक झिझक-सा भी गया।

"क्यों, बताइए न, कुछ तो कहना चाह रहे हैं।" वह काइयांपन और शोखी के ऐसे मिले-जुले ढंग से मुस्करायी थी कि ये भाव अनकही उत्तेजना दिमाग में जला गये। —और वह जो जी में आया कह गया था, "तुम्हारे होंठ इतने सुंदर हैं…पंखुड़ी गुलाब की। मैं इन्हें छू लूं।"

सुनंदा की शोखी एकदम गायब हो गयी और अवाक्-सी उसकी तरफ देखने लगी। उसके होंठों में अब मुक्त होने की-सी फड़फड़ाहट थी—और वह खुद हैरान था कि जिन वाक्यों को कहते हुए वह खुद को इतना छिछोरा-सा मान रहा था वे ही वाक्य इस लड़की पर इतना असर कर सकते हैं।

…और सुनंदा खुश थी तो बाकी सारी दुनिया धुंधली पड़ती चली गयी। यहां बड़ी-बड़ी आंखें थीं…चमकते होंठ थे…गरदन की नरमायी थी…वह सब कुछ ही था जिसके लिए वह इतने दिनों से तरस रहा था। और इतने दिनों बाद एक लड़की को जीत लेने की भावना जिस्म में नशे की तरह भर रही थी।

…कितने क्षण बीते पता नहीं। वह वैसे ही आंखें मूंदे पड़ा रहा।

पर जैसे-जैसे स्थिति पहचानने के क्षण बढ़ते गये वह सुनंदा की बांहों में से निकल जाना चाहता था। वह लचीली बांहें उसे अब बांध नहीं पा रही थीं। लगने लगा था, वह स्वयं नहीं कोई और है जो यहां लेटा हुआ है…तो क्या कुछ देर पहले के वे दो व्यक्ति, संपूर्णता पाने को बिलखते-से वे दो जिस्म—कोई छलना थे !

…जिस्म ! बदन ! कोरा यही कुछ ! और कुछ नहीं ! —उसे बेहद अलगाव-सा महसूस हुआ और उसने करवट बदलने का बहाना कर सुनंदा से अलग हो जाना चाहा। लेकिन वे बांहें उसे यूं आबद्ध कर रही थीं मानो ज़रा भी दूर न जाने देंगी।…और वह अपनी ही

—वह खूब जान गयी है कि पिछले क्षणों में अचानक वह उसे सस्ती-सी समझने लगा था। —कमरे में पसरता शाम का अंधेरा। किसी आश्वस्तपूर्ण साथी की तलाश में आकुल, करीब बजती सुनंदा की सांसें —सब-कुछ मसोसते ढंग से खुद को अपराधी-सा बना गया।

—यह लड़की बहुत दिनों से किसी पीड़ा में जल रही है? और दिमागी तर्क-शृंखला में बंधते-बंधते अंत में यही विचार कौंधा था कि इसकी जड़ में क्या होगा? क्या इसका डैडी!

—और अब वह नहीं चाह रहा था कि अपनी किसी भी प्रतिक्रिया द्वारा इस लड़की को चोट दे।

पर फिर जरा-सी रुखाई स्वरों में रह ही गयी थी, "नहीं, वैसी बात नहीं···पर जाना इसलिए चाहता हूं कि बड़ों का लिहाज़ तो होना ही चाहिए। कोई आ गया तो?"

"बड़े ऽ ऽ?" और फिर उसकी आवाज एकदम टूट-फूट चली थी, "बस, सब को लेक्चर देने की पड़ी है—मैं क्यों, कैसी बात करती हूं। इसे भी कोई जानना चाहेगा?···"

यह क्या हुआ! यह कैसी अजब-सी तोहमत लगा रही है।··· पर यह कड़वाहट सिर्फ उसी के संदर्भ में तो नहीं ही है। लग रहा था, सुनंदा अगले ही पल फूट-फूटकर रो देगी। और वह पिघल ही गया था।

वह उसके करीब हो उसका चेहरा हथेलियों में भर अपनी तरफ करने लगा, "सुनो, गलत समझ रही हो। बल्कि मैं तो सब जानना चाहता हूं। बताओ न अपना दुख।"

"दुख?" सुनंदा ने तड़पकर गीली आंखों से उसकी तरफ देखा था और फिर अजब-सी हंसी हंसती उसके साथ सट आयी थी। पर इस बार यह हंसी उसे धोखा नहीं दे सकती थी। हंसी के पीछे की रुंधती पीड़ा और उसकी छटपटाती सांसें ठीक अपनी छाती पर ठक-ठक बजते महसूस कर रहा था और अब वह पूर्णतया सुनंदा के जीवन में उलझ गया था। इस बार भी उसकी दृष्टियों ने दिमागी उत्तेजना दी थी, पर निरी औरत को निरावरण के लिए नहीं बल्कि आत्मा की

तहों तक छिपे स्मृति-जंजाल को देखने-छूने के लिए···कि लो, यह मैं हूं—चाहो तो देख लो।

और इस ढंग के आकर्षण की शक्ति बड़ी प्रबल थी, अब वह अलग नहीं हो सकता था।

"सुनंदा, बोलो न। ऐसा नहीं, देखो प्लीज़।"

"सुनो।" सुनंदा उचककर बैठ गयी थी। आवाज फिर रोने को तैयार, "मेरे डैडी अपने नहीं।" गहरी शाम के अंधियारे से सन्नाटे में शब्द बिजली का-सा झटका दे गये।

उसे एकदम चुप हो आया देख वह बोली थी, "यह बात मेरे मां-बाप छिपाना चाहते हैं। पर मुझे कोई डर नहीं सच कहने से। फिर जो मेरे करीब आ जाये उससे कहने में तो कोई हिचक ही नहीं।"

"पर सुनंदा···वह फिर है कौन, क्या ऽ···"

"ओह, तुम अब कुछ और समझ रहे होगे। नहीं बाबा, लवर वगैरा मत समझना। है तो मेरा बाप ही।"

"कैसी बात सुन रहा हूं।"

"हूं ऽ ऽ" एक लंबी सांस खींच वह उसकी बांह पर सिर रख आ लेटी थी, "मेरी मां का मरद है वह। मेरे बाबूजी तो तभी मर गये जब मैं नौ साल की थी। वह नहीं रहे तो हम कई-कई दिन भूखे रहते। पर मुझे सब याद है। उससे पहले हम ऐसे नहीं थे। बाबूजी मिल में काम करते थे। हम तब झोंपड़ी में नहीं वहीं के अहाते में, पक्के कमरे में रहते थे। वे मुझसे कहते—'तुझे बड़ी होकर मास्टरनी बनना है। सबसे बड़ी है तू। तुझे तो खूब पढ़ाऊंगा मैं।···' तब हम त्यौहारों पर गुमसुम घर में नहीं बैठे रहते थे। बाबूजी नये कपड़े लाते थे—तब हम कभी रोये नहीं। हम बिल्कुल मामूली थे पर खुद को बहुत अमीर मानते, बड़े खुश रहते थे—हम तब दुखी नहीं थे···" यह आवाज जैसे चुभते कांच के दर्द से बिंध रही हो।

"तो तुम्हारी मां ने इस आदमी से शादी कर ली ?"

"तो क्या करतीं, साल-भर चार बच्चों को लेकर भूख, गरीबी में खपती रहीं। फिर एक मरद हाथ पकड़ने को तैयार हो गया तो छोड़ती

उसे ? बाकायदा फेरे लिये। नयी गृहस्थी बसायी। यह बस्ती वाला कमरा था न, हम इसी में आ गये। ज्यादा कमाने के लिए इस डैडी ने नौकरी छोड़ कोई काम करना चाहा। छोटी-सी बेकरी खोली। पर आदतें तो वही थीं—शराब, जुआ। तब बेकरी भी चलनी-चलानी क्या थी !

"'हम तब फिर भूखे रहने लगे'''बदबू से भरा कमरा, मां के नये बच्चे की टट्टियां धोना, एक टाइम रोटी खा फटी हुई फ्रॉकें पहनना''' यही थे जवानी के पहले दिन। क्या कहते हैं वो'''मज़ेदार ड्रीम-भरी टीन एज, है न ?"

उसने फिर खिलखिलाने की कोशिश की थी। पर हंसी विकृत-सी हो कोई भयावह हंसता हुआ रोना बन गयी थी।

"'''यह भी गनीमत थी, पर'''" आवाज़ उसके गले में अटक-सी गयी, "पर मेरी पढ़ाई छूट गयी। सिर्फ छठी तक पढ़ी। मां ने भी कहा, 'क्या है, रात की पाठशाला में चले जाना।' पर जाना-वाना क्या था, डैडी के दोस्त की परचून की दुकान पर चीजें बांधने का काम करने लगी। वहीं वह आदमी आता था। दुकान का मालिक कहता था—बहुत बड़ा सेठ है। एक दिन मुझ से कहा, इसके साथ जाकर इसके घर सामान छोड़ आ। मुझे उसकी हरकतें बड़ी बुरी लगीं। पर सुनता कौन था—वह सारी गरीबी जो दूर कर सकता था। डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इंतज़ाम था'''पता है, पता है मैं कितने बरस की थी—बारह साल सात महीने की'''"

सांवले गाढ़े अंधेरे में सुना उसका अंतिम वाक्य किसी दर्दीली चीख से भी ज्यादा मर्मभेदी था। दिमाग सुन्न हो गया।

"और फिर'''" कई क्षण बाद ही पूछ सका था।

"फिर क्या, बाद में दो-तीन और'''" किसी रुलाई में, बेसुनी रुलाई में सारे स्वर डूब चले थे।

"तुम्हारी मां भी सब बर्दाश्त करती रहीं ?"

"वह क्या करतीं। जो औरत बेहद गरीबी में इतने बच्चों को पाल रही हो। अनपढ़ हो। जो अपने मरद की बात को ही आखिरी बात

तहों तक छिपे स्मृति-जंजाल को देखने-छूने के लिए···कि लो, यह मैं हूं—चाहो तो देख लो।

और इस ढंग के आकर्षण की शक्ति वड़ी प्रवल थी, अव वह अलग नहीं हो सकता था।

"सुनंदा, वोलो न। ऐसा नहीं, देखो प्लीज़।"

"सुनो।" सुनंदा उचककर वैठ गयी थी। आवाज फिर रोने को तैयार, "मेरे डैडी अपने नहीं।" गहरी शाम के अंधियारे से सन्नाटे में शब्द विजली का-सा झटका दे गये।

उसे एकदम चुप हो आया देख वह वोली थी, "यह वात मेरे मां-वाप छिपाना चाहते हैं। पर मुझे कोई डर नहीं सच कहने से। फिर जो मेरे करीव आ जाये उससे कहने में तो कोई हिचक ही नहीं।"

"पर सुनंदा···वह फिर है कौन, क्या ऽ···"

"ओह, तुम अव कुछ और समझ रहे होगे। नहीं वावा, लवर वगैरा मत समझना। है तो मेरा वाप ही।"

"कैसी वात सुन रहा हूं।"

"हूं ऽ ऽ" एक लंवी सांस खींच वह उसकी वांह पर सिर रख आ लेटी थी, "मेरी मां का मरद है वह। मेरे वावूजी तो तभी मर गये जव मैं नौ साल की थी। वह नहीं रहे तो हम कई-कई दिन भूखे रहते। पर मुझे सव याद है। उससे पहले हम ऐसे नहीं थे। वावूजी मिल में काम करते थे। हम तव झोंपड़ी में नहीं वहीं के अहाते में, पक्के कमरे में रहते थे। वे मुझसे कहते—'तुझे वड़ी होकर मास्टरनी वनना है। सवसे वड़ी है तू। तुझे तो खूव पढ़ाऊंगा मैं।···' तव हम त्योहारों पर गुमसुम घर में नहीं वैठे रहते थे। वावूजी नये कपड़े लाते थे—तव हम कभी रोये नहीं। हम विल्कुल मामूली थे पर खुद को वहुत अमीर मानते, वड़े खुश रहते थे—हम तव दुखी नहीं थे···" यह आवाज़ जैसे चुभते कांच के दर्द से विंध रही हो।

"तो तुम्हारी मां ने इस आदमी से शादी कर ली ?"

"तो क्या करतीं, साल-भर चार वच्चों को लेकर भूख, गरीवी में खपती रहीं। फिर एक मरद हाथ पकड़ने को तैयार हो गया तो छोड़ती

उसे ? बाकायदा फेरे लिये। नयी गृहस्थी बसायी। यह बस्ती वाला कमरा था न, हम इसी में आ गये। ज्यादा कमाने के लिए इस डैडी ने नौकरी छोड़ कोई काम करना चाहा। छोटी-सी बेकरी खोली। पर आदतें तो वही थीं—शराब, जुआ। तब बेकरी भी चलनी-चलानी क्या थी !

···हम तब फिर भूखे रहने लगे···बदबू से भरा कमरा, मां के नये बच्चे की टट्टियां धोना, एक टाइम रोटी खा फटी हुई फ्रॉकें पहनना··· यही थे ज़वानी के पहले दिन। क्या कहते हैं वो···मज़ेदार ड्रीम-भरी टीन एज, है न ?"

उसने फिर खिलखिलाने की कोशिश की थी। पर हंसी विकृत-सी हो कोई भयावह हंसता हुआ रोना बन गयी थी।

"···यह भी गनीमत थी, पर···" आवाज़ उसके गले में अटक-सी गयी, "पर मेरी पढ़ाई छूट गयी। सिर्फ छठी तक पढ़ी। मां ने भी कहा, 'क्या है, रात की पाठशाला में चले जाना।' पर जाना-वाना क्या था, डैडी के दोस्त की परचून की दुकान पर चीजें बांधने का काम करने लगी। वहीं वह आदमी आता था। दुकान का मालिक कहता था—बहुत बड़ा सेठ है। एक दिन मुझ से कहा, इसके साथ जाकर इसके घर सामान छोड़ आ। मुझे उसकी हरकतें बड़ी बुरी लगीं। पर सुनता कौन था—वह सारी गरीबी जो दूर कर सकता था। डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इंतज़ाम था···पता है, पता है मैं कितने बरस की थी—बारह साल सात महीने की···"

सांवले गाढ़े अंधेरे में सुना उसका अंतिम वाक्य किसी दर्दीली चीख से भी ज्यादा मर्मभेदी था। दिमाग सुन्न हो गया।

"और फिर···" कई क्षण बाद ही पूछ सका था।

"फिर क्या, बाद में दो-तीन और···" किसी रुलाई में, बेसुनी रुलाई में सारे स्वर डूब चले थे।

"तुम्हारी मां भी सब बर्दाश्त करती रहीं ?"

"वह क्या करतीं। जो औरत बेहद गरीबी में इतने बच्चों को पाल रही हो। अनपढ़ हो। जो अपने मरद की बात को ही आखिरी बात

समझने वाली मूरख हो…वह तो किसी पुतली की तरह खाना बनाना, खाना, बच्चे पालना, सोना और बीमार रहना—इन्हीं सब बातों में बंधी हुई जी रही थी। पर क्या कहूं—मैंने जैसे जवानी देखी ही नहीं। मैं सूख गयी थी। एकदम सूखी हुई लड़की…"

उसने अपना हाथ सुनंदा के माथे पर रख दिया। गालों को छुआ तो पाया नमकीन गीलापन…वह रो रही है, बिना आवाज़ किये रो रही है। वह बोल रही थी तो उन्हीं क्षणों में बेआवाज़ आंसू भी बहे जा रहे थे !…एक इच्छा घुमड़ी थी कि लाल चुनरी हो जिसे वह इस प्यारी-सी लड़की पर ओढ़ा दे। अपनी बांहों के घेरे का सारा संरक्षण दे दे। पर वह कर ही क्या सकता है !

उसकी हथेली पकड़ अपने सीने पर रखे रही और लगा था सुनंदा को सांत्वना पाने के इस ढंग से राहत मिल रही है।—और वह सोचता रहा कि बेशक वह उसके टाइप की लड़की नहीं। वह कोई गहन जुड़ाव उसके अंतरतम तक नहीं पा सकता। फिर भी कैसी अजीब अनुभूति है—इन क्षणों में वह स्वयं को इस लड़की के प्रति पूरी तरह समर्पित पा रहा है।

"…अब पीछे को भूल आगे की सोचो सुनंदा।" वह सिर्फ इतना ही कह सकता था।

"वह तो है ही। पुरानी बातों का क्या गम ! अब मेरे आगे एक चमकीली दुनिया है।"

"अच्छा, तुम्हारे डैडी ने ही अभिनेत्री बनने की सलाह दी थी।"

"हट, उन्हें मेरे बारे में कुछ भी सोचने का ध्यान ही कहां था। मैंने खुद ही ऊपर उठने की सोची। हमारे पड़ोस में एक लड़की रहती थी जो कभी-कभी कोरस में गाती थी। उसी की सोहबत में इस तरफ ध्यान गया। और कौनसा काम करती भला ? अच्छे बाप की बेटी नहीं—ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं हूं। तो क्या गंदगी में ही पड़ी रहती ?"

"पर सुनंदा, यह तरीका भी कोई उतना आसान नहीं जितना समझ रही हो। कहां-कहां, कितनी ज़िल्लतें सहनी पड़ेंगी, क्या

ठिकाना !—कुछ पाने के लिए जिस्म और जान से कीमत चुकाते-चुकाते थक जाओगी।"

"ऊंह," बड़ी उपेक्षापूर्ण आवाज़ थी, "वाह, तो आपने फिर मेरी कहानी को क्या खाक सुना ! मुझे कोई डर नहीं रहा। इसी बड़े शहर में जन्म लिया। यहीं पली। सब कुछ समझती हूं।"

उसे लगा कि और कुछ कहना व्यर्थ है। सुनंदा ने एक विल्कुल सीधा विचार दिमाग में गढ़ लिया है। इसलिए वह अपने रास्ते से हटने को तैयार नहीं। शायद हर कोई सिर्फ लक्ष्य को सोच, वाकी ऊंच-नीच की कुछ परवाह न करने की धारणा नहीं वना सकता। और वह अचानक ही सोचने लगा कि कहीं ऐसी दुर्घटना उसके साथ भी न हो जाये कि वह स्वयं भी कभी चमकीली तरक्की को लेकर सीधे विचार वना ले। जहां निज का व्यक्तित्व विलकुल गौण समझा जा सके।

और सुनंदा अपनी रौ में वोले जा रही थी, "···मैंने कहा था न, अव मैं गंदे जंजाल से निकल आयी हूं। अव तो इतना नाम हो जायेगा, इज्ज़त हो जायेगी कि शराफत खुद मुझे ढूंढ़ती हुई आयेगी। कोई मुझे वुरा नहीं कहेगा, और तव मैं अपनी असलियत को पा लूंगी। वैसी असलियत···मेरा खुश घर, जहां हम वावूजी के साथ रहते थे।" फिर अचानक ही उसके स्वरों में तीखी धार-सी घुल गयी थी, "मुझे अपनी सारी वेइज्ज़ती, सारे दुखों का वदला—ढेरों रुपया वनाकर, ढेर सारी इज्ज़त वनाकर लेना है।"

सुनंदा की आंखें भयंकर रूप से चमकने लगी थीं और वह कुछ भी कहकर, उसकी वातों को हल्का-सा भी काटकर उसके रंगीन स्वप्न की तस्वीर को धुंधलाना नहीं चाहता था।

···और फिर वही लंवी खामोशी और गहरी शाम के साये। और शायद सुनंदा ने भी एक घुटन ही महसूस की थी, "ओ, हमें विजली जलाने का ध्यान ही नहीं रहा। और कितना वंद-सा लग रहा है। चलो, वाहर वैठेंगे।"

वह एक गुमसुम-सी 'हां' कहकर उठा था।

बालकनी में वह कुर्सी पर आ बैठा था और सुनंदा कमरे से मूढ़ा खींच लायी थी। हवा बढ़िया थी। ऊपर आकाश में सितारों का जमघट। सामने कोई मकान नहीं इसलिए हल्का-सा एकांत भी।

और वह अचानक बोली थी, "अरे, मैं तो भूल ही रही थी। यहीं नुक्कड़ की दुकान पर कांदा-भजिया बहुत बढ़िया मिलता है। ज़रा खाकर देखो। मैं अभी मंगवाती हूं।" फिर वह चुटकी-सी बजाती उठ भी गयी।

"छोड़ो, किससे मंगवाओगी अब ?"

"चौकीदार से कहूंगी। ला देगा वह।" कहते-कहते वह चली भी गयी।

और चाल-ढाल से ज़बरदस्त खुशी बिखेरने वाली सुनंदा के बावजूद वह किसी गहरी उदासी से उबर नहीं पा रहा था।

सुनंदा लौटकर आयी तो खुद ही कहने लगी—"तुम इत्मीनान से बैठो। डैडी तो अभी आयेंगे नहीं। मुझे मालूम है पांच-छह तक न आयें तो दोस्त के यहां से खाना-पीना करके ही आते हैं।"

"अच्छा, एक बात तो बताओ। तुम अब इन लोगों से अलग क्यों नहीं रहती ?"

"इन लोग, क्या मतलब···ओह अच्छा, डैडी वगैरा। यह तो बड़ा सीधा है। मैं भाई-बहनों के बिना नहीं रह सकती। और भाई-बहन अपनी मां के बिना नहीं रहते और मां अपने मरद को छोड़ना दुनिया का सबसे बड़ा पाप समझती है।" फिर वह खुद ही बड़े ज़ोर से खिलखिला दी कि आगे कुछ कहने-पूछने का प्रश्न ही नहीं बच रहा था।

पर फिर भी जैसे वह उसके लिए कोई रास्ता अपनी ओर से खोज ही देना चाहता हो।

—काफी देर बाद शब्दों को सम्हालते हुए वह कह रहा था, "अच्छा, वह जिस गीतकार के बारे में कह रही थीं तुम···वह गांव चला गया। पर चिट्ठी तो लिखता होगा।"

सुनंदा का चेहरा एकदम निष्प्राण-सा हो आया।

उसे चुप देख वह फिर कह रहा था, "शायद ठीक हो गया होगा। तुम उसे सचमुच चाहती हो तो···"

"वस कीजिए," सुनंदा ने तेज़ झटके से उसकी वात काट दी थी। फिर संयत-सी होती वोली, "खैर, तुम्हें भी क्या मालूम। मैंने ही वात पूरी नहीं वतायी।···आज दस महीने हो रहे हैं। वह नहीं रहा तो कहां से ढूंढ़कर लाऊं उसे।"

वह उसे देखता ही रह गया और उसे लग रहा था कि अव जितनी देर तक भी यहां रुकेगा, सुनंदा को यूंही नीरव आंखों से ही देखता रहेगा।

●

डेढ़ दिन वीत गया—सुनंदा की वातें कहीं भी, चलते-चलते काम करते-करते कहीं भी, कभी भी याद आ जाती थीं और एक वियावान सर्द झोंका मन को हिलाकर थर्राहट-सी भर जाता था। आज प्रिंट चेकिंग करते वक्त तो वार वार उसी का खयाल आ रहा था क्योंकि चलते समय उसने वादा ले लिया था कि उसे परसों यानी आज आना ही होगा। वह तव 'ना' नहीं कह सका था और अव वह कुछ असमंजस में था।

सामने चल रही रील में स्पॉट्स आ गये थे। उसने स्वचालित ढंग से 'नो गुड' का संकेत लिख भी दिया। पर सोच फिर भी यही रहा था कि तीन वज रहे हैं, सुनंदा ने इंतज़ार शुरू कर दिया होगा। काम की वजह से अगर एक-डेढ़ घंटा लेट हो जाये तो वुरा नहीं मनायेगी। पर विलकुल ही न जाये तो ज़रूर उसे वुरा समझेगी।

और काम तो आखिर खत्म होगा ही। आधा घंटा ही और लगेगा ···उसे दिमागी थकान नोच-सी रही थी। अभी तो और कितनी वार देखनी है यही फिल्म। पहले एडीटिंग में कितनी वार और अव वीस-पच्चीस वार एक ही दृश्य देखते जाना दिमाग को कितनी सुस्ती-भरी जड़ता दे देता है।

पर उसे यह भी खूव मालूम है कि आइंदा इस काम को न लेने की कसम भी खाये लेकिन क्या पता फिर ऐसी विवशना ही होगी जो

इसी काम को पाने के लिए लपकना पड़ेगा। और इसके साथ ही जेब में पड़े रुपयों की याद आ गयी थी···और फिर इस काम को थकाने वाला समझने की बात नहीं सोचना चाह रहा था। कल ही राजनंद की कृपा से दस प्रिंट के तीन सौ मिल गये थे। वैसे कई बिल चुकाने में इतने उड़ जायें। पर वह आधे बिल चुकायेगा ताकि कुछ दिन तो चैन से गुज़रें।—वह थोड़ा-सा आराम महसूस कर गया। पर फिर कुछ देर बाद वही बात दिमाग में थी।···सुनंदा अपने घर में उसका इंतज़ार कर रही होगी। उसने कहा था कि डैडी मां वगैरा को लेने कल्याण चले जायेंगे। वे सब लोग रात दस-ग्यारह बजे तक ही आयेंगे। तुम तीन-चार बजे आ जाना।

और अब वह वहां पहुंचने की बात तय नहीं कर पा रहा। काम खत्म कर बाहर आया तब तक भी इसी द्वंद्व में घिरा हुआ था।—यह संबंध बढ़ाये चले जाना उतना ठीक नहीं। बुद्धि की तर्कणापरक सोचों में बंधते हुए यही जाना था कि तनाव-भरे दबाव तो थे ही पर दरअसल अनिता से पायी अस्वीकृति ही थी जो सुनंदा तक पहुंचा गयी।

···लेकिन अब तो तय मुलाकात के ढंग पर जा रहा है। पर तमाम दिमागी वर्जनाओं के बावजूद यह सोच भी बहुत नुकीली है कि 'जाना तो होगा ही' वरना सुनंदा इंतज़ार करती रहेगी।

पर उन सीढ़ियों पर चढ़ते हुए कहीं कोई आवाज़ मस्तिष्क में भन्नायी थी···क्या सचमुच सुनंदा की वीरानियत दूर करने आया है या फिर अपनी ही दबाव-भरी स्थितियां यहां तक खींच लायी हैं। पता नहीं!···परंतु वह बिना रुके कुछ पल बाद ही सुनंदा के कमरे में बैठा हुआ था।

रात कोई आठ बजे बस में बैठा वह लैब की तरफ जा रहा था। पर आज सुनंदा की गीली आंखें मन पर नहीं चिपकीं। उमंगें चिपकी हैं। उस पर खुशी की रंगत चढ़ी हुई थी। 'मुझे एक और नया बड़ा कांट्रैक्ट मिल गया।' यह कहती हुई वह कितनी खुश लग रही थी। इतनी कि इतना बड़ा उत्साह देख वह भी उमड़ती-सी आशा से

भर गया था। यहां तक कि अपनी निराशापूर्ण जड़ स्थितियों को वदल लेने की युक्तियां भी नये स्तर पर वना गया था। और फिर अचानक ही चौंक गया था। युक्तियों के दिमागी धरातल पर सोचने का उसका अपना ढंग क्यों गायव है! वह भी उन कुछ लोगों की तरह किसी तरह, हर कीमत चुकाकर लक्ष्य-सिद्धि की वातें क्यों सोच रहा है!

—वह हड़वड़ा गया था। फिर सुनंदा के यहां पहुंचने से पहले वनाया, औपचारिकता निभा पन्द्रह मिनट में ही काम का वहाना वना वापस चले आने का, संकल्प भी ढह गया था।

'तुम वहुत पसंद आये हो। तुम्हारा ढंग वहुत पसंद आया है।' —सुनंदा का यह वाक्य हल्के स्तर का नहीं, अपने हक में कही मधुर वात जैसा लगा। और दिल की सारी मनाही को शून्य में मिला वे दोनों सव-कुछ भूल-भाल सिर्फ स्त्री और पुरुष वने रह गये थे।

···और अव लौटते हुए जो वात सवसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो उठी थी वह यही कि सुनंदा की आशाभरी चमक उसके अपने दिल पर भी जम गयी थी। फिर उसने रात वाली चेकिंग का काम भी सुस्ताते हुए नहीं किया। पता नहीं क्यों, वार-वार अनुभूति होती कि कुछ नया घटित होगा। जो वदलाव लायेगा। सव वदलेगा और संघर्ष की धुंध हट जायेगी। और काम समाप्त कर घर लौटते वह सोच रहा था कि अकारण ही उम्मीदों के जंजाल में फंस रहा है। पर फिर भी कुछ है कि मन उतना गिरा हुआ नहीं है।

घर के पास पहुंचकर भी घर जाने को तवीयत नहीं हुई। वह उस नुक्कड़ पर पहुंचा जहां इस वक्त साढ़े ग्यारह वजे भी मटन-मच्छी की रेड़ी गैस-लैम्प से टिमटिमाती खड़ी थी। वहीं कोने की, रात गये तक खुली रहने वाली पसंदीदा पान की दुकान तक पहुंचा। पान लगवाये। रुपये दिला देने के लिए राजनंद की प्रशंसा मन में उतारते मस्ती से पांच का नोट निकाला। सिगरेट का पर्याप्त कोटा जेव के हवाले किया और घर की तरफ वढ़ आया।

पर विल्डिंग की दीवार के पास पहुंचते ही पांव ज़मीन से चिपक गये थे। पहली मंजिल के अपने कमरे से रोशनी फूटती देख हैरान

रह गया। मंजु आ गयी क्या ? और वह तेजी से सीढ़ियां उलांघता गया।

मंजु घर में आ गयी थी और घर बदल गया था। रिंकी की मीठी-मीठी बातों से घर में जान-सी आ गयी थी।

रात जब घर पहुंचा तो वे दोनों ही एक-दूसरे को देख खुशी के मारे ज्यादा बोल नहीं पा रहे थे और फिर मंजु ने कहा था, "क्यों, खयाल तो न होगा कि मैं घर पर मिलूंगी।" फिर वह वही पहले वाली मंजु ही लगी थी जो रूठते-मचलते बोली, "ऊंह, इतने दिनों से फोन भी नहीं किया।"

मंजु के यूं हथियार डाल देने से उसका अहम् एक ऊंची खुशी से उछला था और मंजु की बातें थीं मजेदार स्पीड पर "···च···च्च··· किचन की क्या हालत कर रखी थी !···ओह, आते ही सारा कमरा साफ किया—सोच लिया है अबकी पापा के यहां गयी भी तो दो दिन से ज्यादा नहीं ठहरूंगी।"

और वह इतनी खुशी में आया हुआ था कि पुरानी बातें दोहराना बेतुकी बात लग रही थी—यह भी क्या कहना कि तुम अपनी मर्जी से गयी थीं। अब घर गंदा हो जाने की बातें ऐसे कह रही हो जैसे कोई बड़ी मजबूरी थी अलग रहने की। बस इतना ही कह सका, "पहले तुम्हारे आने की बात पता होती तो जल्दी आ जाता।"

मंजु इसका कुछ उत्तर न देकर तेज-तर्रार घरेलू बातें चलाती रही, "···हाय, पता है ममी ने रिंकी को बड़ी सुंदर फ्राकें लेकर दी हैं।

इतने दिन वहां रही न। मेरे लिए एक साड़ी, नाइटी और तुम्हारे लिए बुश्शर्ट, पैंट। दिखाऊं ?"

समझ गया, यह अपने लौटने की यानी हथियार डालने की चर्चा सुनना तक नहीं चाहती और न ही स्वीकारना। कुछ ज्यादा पूछा-आछा तो फिर वही झगड़ा और रोना-धोना न मच जाये। वह भी उसके इस नये उत्साह में रम-सा गया था।

फिर ढेर सारी मामूली-मामूली-सी बातें कहने-सुनने के बाद ही वे कमरे के अंधेरे में चुप-से बिस्तर पर लेटे हुए थे। सड़क की रोशनी छत पर टुकड़ों-टुकड़ों में चौकोर गोल उजलाहट अंधेरे कमरे में ले आयी थी ···अपने बिलकुल करीब वह किसी एक प्रतीक्षा की सांसें महसूस करता घुट-सा गया···मंजु साफ प्रतीक्षा को सांसों में बैठाये है—वह बढ़ेगा, उसे छुएगा···पर अपना हाथ तक बढ़ाने में वह निर्जीवता पा रहा है। मंजु कल आ जाती। पर आज न आती। लेकिन वह तो आ गयी है। अब वही होगा जिस चीज़ को उसने कभी नहीं चाहा।

वह तो दूसरों पर भी व्यंग्य कसता रहा है कि आखिर यह हो कैसे सकता है!—सिर्फ़ सात-आठ घंटे पहले किसी के प्रति इतनी तीव्र संवेदना और फिर कोई और। पर उसे पता है कि यह गैरमामूली बात भी एक मामूली ढंग से घटित हो जायेगी जैसा कि होता है। बड़ी सफाई से सब कुछ विरुद्ध चला जाता है। बस, अभी हाथ बढ़ा मंजु को छू लेगा। वरना मंजु की प्रतीक्षा बढ़ गयी तो संशय मंजु को गुस्सा दिला देगा। उसका यह अलगाव आने वाले झगड़े का खतरा बना सकता है। और वह किसी खतरे का एकांश भी नहीं सहना चाहता।

अभ्यस्त ढंग को याद करते हुए व्यवहार में ला उसने मंजु को भरपूर प्यार किया—इतना कि जब उसे बांहों में लिये नींद आने लगी तो मंजु की संतुष्ट नींद-भरी सांसें महसूस कर सकता था।

•
•

सुबह उठा तो पाया कि मंजु ने सारे घर को ही एक मधुराई की रागात्मकता में बांध रखा है। आज मुद्दत के बाद वह खुद को एक

सुव्यवस्थित ढर्रे पर आया हुआ पा रहा था। रिकी से भी खूब ला
करता रहा। उसकी सीप-सी आंखों पर पलकों की झालरें खिली थीं
जिन्हें वह चूमता तो कितनी मासूम स्वच्छंद हंसी से किलकार उठत
कि मन की सारी उदासी दूर भाग जाती।

ग्यारह बजे वह नहाया और तभी ही नाश्ता हुआ। और आ
मंजु को भी उसकी बेवक्त वाली इन बातों पर कोई शिकायत नहीं थी

बस चलते समय मंजु ने ज़रा रोब जताते यही पूछा था—"क्यों
बिना खाये ही जाओगे?"

"अभी तो नाश्ता हुआ। अब वहीं होगा दो ढाई बजे खाना।"

"क्या कम्पनी का खाना बहुत बढ़िया होता है?"

"खाक बढ़िया होता है। मुफ्त का जरूर होता है।"

वह हंसने-हंसाने का मूड बिलकुल नहीं छोड़ना चाह रहा था।

फिर मंजु ने अचानक कहा, "अरे, मैं तो भूल ही गयी। बहुत-सी
चीज़ें खत्म हैं। रुपये तो दे जाओ।"

"लो जनाब, जितने चाहो।" उसने पर्स खोल पांच दस-दस के नोट
निकाल सामने रख दिये थे।

"अच्छा सुनो, सब्ज़ी ला सकोगे?..." फिर जैसे मंजु को एकाएक
ही याद आ गया हो कि एक इस बात से वह कितना चिढ़ता है। और
शायद वह भी कम से कम आज कोई तनाव नहीं पाना चाहता था उसने
भी संयत रहते हुए ही कहा था, "बाल्कनी से देखती रहना। कोई तो
भाजीवाली आयेगी। महंगी-वहंगी क्या होती है। खास फर्क नहीं
पड़ेगा। उसी से ले लेना। मैं तो रात को देर से ही आऊंगा न।"

"आज की छुट्टी ले लो तो! देखो मैं इतने दिनों बाद आयी हूं।"

एक पल को उसका भी मन हुआ कि सारे काम को भूल-भाल मंजु
में ही खोया रहे, पर फिर वास्तविकता का ध्यान आ गया। काम
किसी कीमत पर नहीं छोड़ा जा सकता—वह तो अगर सचमुच बीमार
भी हो जाये तो यही काम किसी और को मिल जायेगा...और काम
हाथ से निकल जाने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। जाने
दीनू साहब को कब दूसरी पिक्चर मिले! वह कोई रिस्क कैसे ले

सकता है। और जाना है तो सामने बैठी मंजु की निराशा की तरफ देखना भी सहन नहीं।

वह जैसे सारी स्थिति के प्रति चिढ़ गया। क्यों वह नहीं रुक सकता या क्यों मंजु ही काम को नहीं समझती?—इसने ध्यान ही क्यों दिलाया रुकने की बातों की तरफ?

उसने मंजु को खुश करने की कोशिश करते हुए कहा था, "कल की छुट्टी के लिए कोशिश करूंगा। पहले ही कह दूंगा कि प्रिंट शाम को देखना है। देखो, उदास मत हो। चीअर अप।"

शुक्र है, मंजु ने मुस्कराहट दे दी थी और वह दस मिनट का रास्ता तय करने के बाद बस स्टॉप पर पहुंचा तो बहुत दिनों बाद उसे उमस-भरी धूप में भी एक खिलापन महसूस हुआ था। सड़क पर पेड़ों से ढुलके-लुढ़के पत्तों की सरसराहट वाली आवाजें बहुत दिनों बाद मस्ती की धुन देती लगी थीं।

सामने नज़र गयी—अरे अपनी पिक्चर के पोस्टर भी लग गये। फिर एक भरी-भरी-सी खुशी जिस्म में तैर गयी। पोस्टर के प्रति इस अपनेपन की पहचान ने उसे एक तगड़ापन दे दिया था। उसने अपने-आपको पहले से कहीं सुदृढ़ पाया···ये लोग करें प्रिंट्स को स्मगल पर वह जहां का नमक खाता है वहां ऐसा कुछ हरगिज़ न करेगा। कह लें उसे हरिश्चन्द्र की औलाद। मज़ाक उड़ा लें पर वह झुकेगा नहीं। उसकी नींव पक्की है···यूंही नहीं पला है।

घर में मां तुलसी रामायण का पाठ करने में प्रवीण थीं। दादा को महावीर जी का इष्ट था। और वह उस वंश का था जिसके कई लोग देश की खातिर जेल में सड़े थे। जिनके माथों पर लाठियों के घाव थे। ···इस तरह आज अचानक उसे अपनी पृष्ठभूमि पर गर्व हो आया था। पर यह भी तो याद आया था कि वे सारे ग्रंथ मां में जागृति नहीं ला पाये थे। पिताजी ने भी अन्याय सहना ही सीखा था। पिता ने धोखा खाया। यही क्या, धोखेबाज़ ताऊजी भी तो उसी पृष्ठभूमि में उगे चरित्र थे और वह कुछ उलझ-सा गया।

पर लैब में पहुंच आज वह बहुत दिनों बाद स्वयं को किसी शांत

मन:स्थिति में पा रहा था। अगले दिन तक भी वह हर परेशानी को भूल मंजु और अपने में ही तल्लीन था। मन की हालत इतनी दवाव-रहित थी कि वह काम करते-करते भी चौंक-सा गया कि आज कोई अतिरिक्त वोझ माथे पर नहीं है!—और जवकि उसने सोचा था कि सव कुछ ही टूट-फूट रहा है। खास कर सुनंदा के घर की उस शाम के वाद तो लगा था कि सारे सच ढह ही गये। पर अव लग रहा है कि इतनी आसानी से सव विखरता नहीं है। वनी-वनायी सुदृढ़ता का एक झटके में ढह जाना कोई सहज वात नहीं। जिंदगी वैसे ही अपनी पूरी गति पर लौट आयी है।

:

शाम को चेकिंग का काम खत्म हुआ तो एक प्याला चाय के लिए कैंटीन में आ वैठा था। वहां की मद्धम रोशनी में उसने कोने में वैठे धीरज की तरफ देखा भी नहीं। वह खुद ही नज़दीक चला आया तो वह चौंका था।

"कहो यार, कैसे हो?"

"मज़े में।" यह कहकर धीरज वहीं कुर्सी पर वैठ भी गया। छोकरे को आर्डर देने के वाद भी चुप्पी कायम रही। धीरज चुपचाप अपनी सिगरेट के धुएं को घूर रहा था।

"तुम भी आज अभी तक यहीं हो।"

"रहना ही है," धीरज इत्मीनान-भरी सुस्त आवाज़ में वोला, "जव चौवीस घंटे प्रिंट निकलने की तीन शिफ्ट हैं तो आदमी भी तीन ही चाहिए न?"

"ओह, अच्छा।" अचानक धीरज भी उसे अपने विरोधी माहौल का ही वाशिंदा लगा। कम रोशनी में काले-उजले सायों में घिरा उसका चेहरा भी अलग-सा ही जान पड़ा। एक मनहूस-सा वातावरण जैसे उसके अपने ऊपर हावी होने लगा। मक्खियां मेज़ पर चिपक-चिपक कर भिनभिना रही थीं। इस वक्त दो चार आदमी ही दूर वाली मेज़ों पर थे। वाहर दायीं ओर के नल पर एक छोकरा जूठी प्लेटें धो रहा

था खूब जोर से गाते हुए। अंदर के किचन से उठ रही प्लेटों, गिलासों की उठा-पटक वहुत मनहूसियत का आकार वनाती विखर रही थी।

"क्यों धीरज, तुम भी शामिल हो सुरेश भाई के साथ ?" उसने सीधे ही मैदान में उतर दोस्त-दुश्मन का पता लगा लेना चाहा।

"क्या मतलव ?"

"मतलव तुम समझते हो।" वह लापरवाही की इंतिहा वरतने वाले भाव चेहरे पर ले आया।

पर धीरज भी एक ही काइयां था। वड़े सुस्ताने वाले ढंग से वोला, "हां, ठीक है, मैं तो मतलव समझता हूं पर तुम्हें भी समझना चाहिए।"

"क्या मतलव ?"

"मतलव तुम समझते हो।"

वह मात खा गया था। वुरी तरह खीझ गया, "चलो जो भी है। अव हम दोनों सारी वातें जानते ही हैं तो साफ़ ही कह दूं। तुम पछताओगे इन लोगों के साथ मिलकर। अपराधी कभी नहीं वच सकता। यह जान लो।"

"मैंने वहुतों को वचते देखा है। मेरे लिए यह वात कुछ मायने नहीं रखती।"

"कभी अखवार उठाया है, रोज कितनी सज़ाएं होती हैं।"

"उसी अखवार में यह भी देखा है कि मजवूर आदमियों के सूसाइड केसेज़ होते हैं। जनाव शरदजी, मैंने इतनी भूख, इतनी वेकारी देखी है कि मुझ पर किसी लेक्चरवाज़ी का कुछ असर नहीं होने का। और मैं अपने को ज़ाया नहीं करना चाहता। एक मौका हाथ लगा है—फिर कव मिलेगा ज़िंदगी में इतना रुपया।"

"यही सोचें न सव तो सारी दुनिया चोर वन जाये।"

"यह चोरी नहीं है। किसी को कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। वह समुद्र पार वाला डिस्ट्रीव्यूटर करोड़पती है और यह प्रोड्यूसर भी आउटराइट सेल में अपना रुपया ले चुका है। वीच में हम भी कुछ कमा खायें तो क्या वुरा ?"

"पता नहीं, तुम किस मिट्टी के वने हो। देखो, मेरा तो घर है,

वीवी है, वच्ची है फिर भी…"

"यह वात रहने दो। सिर्फ़ शादी से ही घर थोड़े बनता है। मैं भी एक वेहद मुसीवतज़दा परिवार का ही सदस्य हूं। और आगे का भी तो सोचना है।"

"पर किस अनजान भविष्य के लिए ही हम इतना रोना मचाते हैं। हमें क्या पता आज जो बुरा कर रहे हैं उससे कल जरूर अच्छा ही होने वाला है।"—अपने खाली क्षणों में किये चिंतन के आधार पर ऐसी वात खुद-व-खुद होंठों पर चली आयी थी। और साथ ही यह अनुभूति भी कि वस अव धीरज उसकी वात का मुरीद हो जायेगा। एक गहरी ज़रूरत भी थी इस वात की—धीरज को उन लोगों में शामिल नहीं होना चाहिए। वरना वह वहुत अकेला हो जायेगा और अकेला आदमी अक्सर शक्तिहीन हो सकता है। वेहद वेचैनी से वह सिगरेट और माचिस की डिविया को मेज़ पर वजाने लगा था।

धीरज ने थोड़ी देर वाद ही वड़े इत्मीनान से पिछली वात को यूं काटा था—"तुम भाषण वहुत अच्छा दे लेते हो पर शरद, तुम तरक्की नहीं कर सकोगे।"

यह एक वाक्य उसकी दुखती रग था। वह सब वातें सह सकता था पर इस वाक्य को नहीं। लेकिन इससे झगड़ना नहीं चाहता और गुस्से से छोकरे को आवाज़ देने लगा, "तुम्हारे इंतज़ाम को क्या हुआ है। कुछ होश भी है। टाइम खराव करते हो। आधा घंटा हुआ, किधर है दोसे का आर्डर।"

"लाया साव…लाया साव" छोकरा दांत निकालता भागता-सा चला गया था।

"अच्छा, मेरी वात जाने दो पर सुरेश भाई की हालत मालूम है? पांच वच्चे, वाइफ को प्लूरिसी हो गयी थी। कितना रुपया खर्च करके उसे मुश्किल से वचाया। तव इस प्रोड्यूसर ने एडवांस देने में कितनी कंजूसी दिखाई थी। सुरेश भाई इतनी जल्दी यूंही वुड्ढे नहीं हुए। अपनी जवानी के दिन उस गुफा रोड वाली पहाड़ी के झोंपड़े में ही काटे हैं उन्होंने। तो क्या हो गया, उम्र के आखिरी हिस्से में कुछ तो

आराम पा लें।"

धीरज बोले जा रहा था और अब उसके पास जैसे कोई उत्तर नहीं बचा था और कोई सवाल भी नहीं।

दोसा आया और वह जल्दी-जल्दी बड़े निवाले गले में ठूंसता रहा। धीरज भी जैसे उसका खाना खत्म होने के इंतजार में था, उसने पानी के घूंट भरे तो, दो टूक लहजे में पूछा, "तुम्हें हमारा काम करना है या नहीं ? तुम साथ दोगे तो बहुत आसानी हो जायेगी।"

"तुम कितनी ही दलीलें दो—चोरी तो चोरी ही होती है। जिनके पास रुपया है उन सबने ही मुफ्त का माल नहीं बनाया। उनकी भी जाने कितनी मेहनत होगी। मैं ऐसा गलत काम नहीं कर सकता।" वह बेहद आत्मविश्वास बटोरते हुए पूरी दृढ़ता ही दिखाना चाह रहा था कि उसी समय सुरेश भाई दिखाई दिये।

वह आकर वहीं जम गये, "क्या बातें हो रही हैं ?"

धीरज एकदम ही बोल गया, "सुरेश भाई, इसे समझाओ। नहीं मान रहा। बड़ा राजा राम जैसा पैदा हुआ है।"

उसने फिर खुद को बुरी तरह घिरते हुए महसूस किया। सारी ताकत से वह इन लिपटती रस्सियों को झटक देना चाहता था। सुरेश भाई की हस्ती का लोहा सभी मानते हैं। क्या पता किस लोहे से उसे भी दाव दें।

"क्यों भाई, 'कट' ज्यादा चाहिए क्या ? तो दो प्रिंट बनाने का पच्चीस नहीं तो तीस हज़ार ले लेना," सुरेश भाई ज़ोर से हंसे थे, "एक बार मजा तो चखो इतनी सारी इकट्ठी रकम का।"

वह चुपचाप डिब्बी से निकाली सिगरेट को उलटता-पलटता खुद पर नियंत्रण लाने का प्रयत्न करता रहा।

उधर सुरेश भाई की लाग-लपेट भी चालू थी, "भई देखो, टीम-वर्क से ही गुज़ारा होता है। तुम साथ नहीं दोगे तो कल हम तुम्हारा भी साथ क्यों देंगे किसी बात में।"

फिर सुरेश मज़े से मुस्कराते हुए चुप्पी लगा गये। क्या मतलब है इनकी मुस्कराहट का ? कितनी ठोस है यह मुस्कराहट। जैसे स्थिति के

सारे रोयें-रेशे से वाकिफ हों।

उसने माथे पर फिसली पसीने-जैसी चिपचिपाहट को हाथ से पोंछा था और फिर बड़ा घुन्ना-सा मुंह बनाये पूछा था—

"वैसे आप यह काम कर भी लें तो भी आप लोग लैब की रिकार्ड-फाइल से कैसे बचेंगे ?"

सुरेश भाई बड़े उत्साह से आगे झुक आये। "वह सब हम पर छोड़ो। बहुत-बहुत दिनों बाद भेद खुलेगा क्योंकि पहले तुम्हारी कापी ही चेक की जायेगी। उससे तो हिसाब मिलता ही होगा सब ओ० के० प्रिंट्स का।"

"हूं···अभी तो चलें, अगला प्रिंट देखना है न!"—वह कम से कम इस वक्त तो इन सारी बातों से पिंड छुड़ाना चाहता था। थियेटर में पहुंच प्रिंट चेक करने में उसने सारी चेतन अवस्था को केंद्रित कर दिया।

काम खत्म हुआ तो रात का अंधेरा फैल चुका था। बाहर निकलते हुए उसे मनोचा दिखाई दिया। इस वक्त प्रिंट्स संभालने की ड्यूटी उसी की थी।

वह उससे नजर बचा जल्दी से सड़क पर निकल आया। और बाहर आकर उसे यूं लगा था मानो किसी साज़िश के घेरे से बाहर निकल चैन की सांस ली हो।

उसे तसल्ली हुई कि एक सुकून-भरा घर है जहां इस तमाम बोझिल शाम के बाद पहुंचा जा सकता है।

वह कई दिन तक अपने उन साथियों से वचता ही रहा । बीच-बीच में वे लोग उसे एक गलत और रद्दी आदमी सिद्ध करने की कोशिश ज़रू करते रहते । पर उसने सोच लिया था कि इन लोगों द्वारा चिढ़ाय जाते पर भी कुंठित नहीं होगा, इन्हें अपने पर हावी नहीं होने देगा ।

लैव की दो छुट्टियां आयीं तो बड़ा सकून-सा मिला । मंजु औ रिंकी को साथ लिये वह एक पूरा दिन 'विहार लेक' तक घूम व‍ह व्यतीत कर आया । वस, सारी दुनिया मंजु तक ही सीमित करके द्व में घिरी हर मुसीवत की वात भूल-सा गया ।

•
•

और फिर लैव में काम शुरू हुआ तो भी अलग-अलग-सा अपने काम में ही लगा रहा । तीन-चार दिन और घर, लैव की ज़िंदगी में वीत ग —फिर वची थी वही अभाव की तकलीफ ।

सुवह ही मंजु से थोड़ी झड़प हो गयी थी । रिंकी के लिए डाक्ट ने जो टानिक लिखे थे वे लाने वहुत ज़रूरी हैं ।

तव मंजु ने कहा था, "लो और मुसीवत, कल गैस खतम हुई औ उसी में पास रखे रुपये भर दिये और अव इतनी सारी चीजें चाहि एकदम ज़रूरी।···और सुनो, राशन की लाइन में मुझसे नहीं खड़ हुआ जाता । वह तो गनीमत है कि ममी ने गैस दिलवा दी थी वरन केरोसिन की लाइनों में खड़े होने पर तो छुरे चल रहे हैं।"

"ओह-ओ, तुमसे कहता कौन है लाइनों में खड़े होने को ।"

"तो तुम जाओगे ?"

"कमाल है, काम छोड़कर जाऊं ?" और उसे याद आ गया था कि कल ही तो बिल्डिंग के चौकीदार को भेज राशन मंगवाया था— "क्यों, कल ही राशन मंगवाया तो था।

"ओफ-ओ, तुम तो भूल जाते हो घर की बातें। एक ही बार में राशन की सारी चीजें मिलती भी हैं। शक्कर कहां मिली थी। अब क्या ब्लैक में लायें ?"

ब्लैक में चीजें मंगवाने या चौकीदार को बार-बार भेजने के लिए बार-बार उसे टैक्सी का भाड़ा देने की मजबूरी की समस्या तो सचमुच विकट थी। पर भूलने वाली आदत की बात कह उस पर जो आरोप लगाया जा रहा था वह झूठा था। उसने प्रतिवाद करना चाहा पर फिर किसी थकान के ख्याल से चुप ही रह गया था। बस, इतना ही कह पाया—

"फिक्र न करो, आ जायेंगी सब चीजें।"

"कहां से आयेंगी। रुपये हों तो आयेंगी न।"

और वह हंसकर ही कह रहा था, "शाम को रुपये मिल रहे हैं। डोंट यू वरी।"

•
•

पर अब कहां हैं रुपये। सुरेश भाई यूंही जले-भुने बैठे हैं। पिछली शाम ही तो थियेटर के अंधेरे में पास रेंग आये थे ..."लिख दो न, यह रील चॉकी हो गयी। दूसरी बनायें।"

"उसका दिमाग भन्ना गया, "कैसे लिख दूं। जब खासी डीपर है तो।"

"रीलें बचाने के लिए," वे ढीठता से मुस्करा रहे थे।

उसने काफी सख्त हो जाने की जरूरत महसूस की थी, "आपको मैंने अभी अपना फैसला बताया नहीं है।"

"तुम सब कर सकते हो। यार, अब बोर मत करो।"

"पर..."

"पर क्या ! हमें जिंदगी के अखाड़े में उतरे ज़माना हुआ। अब तक जीतने के सारे दांव-पेच जान चुके हैं। हमारे फैसले बिलकुल ठीक होते हैं।"

"......"

•

और आज भी बेहद झुंझलाहट में थका-थका-सा वह बिल्डिंग से निकल ही रहा था कि वह सामने आ गयी···वह भौचक्का-सा खड़ा रह गया।

वह खिलखिलायी थी और मानो उस हंसी के कारण ही पूरी तरह यकीन कर था कि वह सुनंदा ही है। वरना उसका हुलिया एकदम बदला हुआ था।

—दो चोटियों की जगह स्ट्रेट-हेअर स्टाइल में बाल कंधों पर लहरा रहे थे। भौंहें झुकावदार रूप की जगह आंखों को उठान देती हुई एकदम खिंची-सी—उन पर आधे माथे को ढंके गागल्स। जिनमें से खूबसूरती से लगे आई-लाइनर की कजलायी रेखा से और भी लंबी-सी बनी, वे बड़ी-बड़ी आंखें झांक रही थीं। सूने होंठों की जगह न दिखने वाले अंदाज़ से रची, लेटस्ट-शेड की लिपस्टिक वाले होंठ और साड़ी की जगह लीफ-ग्रीन और सुनहरे रंग से मिलाजुला एक ड्रेस-सूट।

"हैरान क्यों हैं ? भूल गये क्या ?"

"भूलेंगे क्यों, पर ख्याल नहीं था कि यूं अचानक मिल जाओगी।"

"पिक्चर के लिए सिल रही ड्रेस देखनी थी साथ वाली मार्केट में। अपनी डिज़ाइनर से कहा, मैं भी देखूंगी। वहां काम खत्म हुआ तो सोचा, पास ही तो हूं तुमसे भी मिलती चलूं।"

"शुक्रिया," मन ही मन उसके इस नये गेट-अप की प्रशंसा कर गया था।

और यूं बात करते-करते वे लोग बरामदे के सुनसान कोने तक चले आये थे और सुनंदा ने कहा था, "उंह, कभी आये ही नहीं फिर घर पर।"

"वह···वह मैंने सोचा कि···तुम यह न समझ लो कि खामखाह

तुम्हे परेशान करने लगा हूं।"

"वाह, ऐसा कैसे···"

"नहीं, मेरा मतलव है कि तुमने खुद ही कहा था कि घर पर सव आ जायेंगे। मैंने सोचा, शायद वे लोग मेरा आना पसंद करें या न करें।···"

वह ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पा रहा था क्योंकि असल में तो यह कारण नहीं था। वह तो वैसे ही नहीं गया। यही सोचकर कि, 'जो हुआ सो हुआ, अव सुनंदा से वैसा परिचय वनाये रखना क्या ठीक वात है?'

और इस क्षण भी उसे लगा कि अगर अभी सुनंदा अपनेपन का अधिकार जताने लग गयी तो?—तव तो वड़ी मुश्किल हो जायेगी।

अपने एकनिष्ठ प्यार का आत्मगर्व लिये मस्त रहता था। वह भ्रम भले ही चरमरा गया हो—फिर भी अव ज़िंदगी यूं समतल-सी ही है। ठीक गति पर है। इसलिए अव कोई खतरा क्यों ले। पर वह इसे टालेगा भी कैसे? क्योंकि इस लड़की से रुखाई वरतना भी उसके लिए संभव नहीं रहा है।

वह इन्हीं सारे विचारों में वेचैन हो रहा था कि सुनंदा ने कहा, "चलिए, मैं ही मिलने आ गयी।"

"अच्छा···तो काम शुरू हो गया है।"

"हां ऽ···वही पिक्चर। जिसका कांट्रैक्ट साइन किया हुआ था। इस स्क्रीन में फुल पेज की एनाउंसमेंट भी आ रही है। ज़रूर देखना। ···और वाइ चांस वह दूसरी वाली भी अगले हफ्ते ही शुरू हो रही है।"

"अरे ऽ··· तो इतनी देर वाद वता रही हो।—तव तो खूव वधाई लो।" और उसने वड़े उत्साह से वधाई देने को हाथ भी आगे वढ़ा दिया था।

"अच्छा, मैं भी सोच रहा था कि यह हुलिया कैसे वदल लिया। सच, अव तो वहुत ही अच्छी लगने लगी हो।"

"सव यही कह रहे हैं।" सुनंदा की शक्लो-सूरत में क्या आवाज़

तक में भी भरपूर आत्मविश्वास की हंसी थी, जिसका पहले उसमें नितांत अभाव था।

और वह कह रही थी, "कंपनी वालों ने ही ब्यूटीशियन के हवाले कर दिया था। और देखो उसने कितना बदल दिया। इसी में बिज़ी रही। वरना तुमसे मिलने, अपनी न्यूज़ देने पहले ही आती।"

एक दूरी का आभास जो महसूस कर गया था…अब फिर लगा कि नहीं, खास दूरी नहीं। तो क्या यह मिलने की बात कहेगी ?

पर सुनंदा ने जो कुछ कहा उससे अपनी ही नज़रों में मूर्ख बन गया था।

"अच्छा, आपको भी काम होगा। मैं चलूं, मुझे पहुंचना है। कुछ स्टिल्ज़ खिंचेंगी पब्लिसिटी के लिए।"

"अच्छा, ऐसा…ओ० के० देन विश यू वेस्ट आफ लक।"

"थैंक यू।…तो चलूं मैं। मैं जुहू में बड़ा घर ले रही हूं। एड्रेस बताऊंगी। आना ज़रूर।"

"आऊंगा जी, ज़रूर।" यह वाक्य कहना ही चाहिए था, बस इसलिए कह गया था।

सुनंदा 'बाय-बाय' कहकर चली गयी थी।

वह उसे देखता रहा दूर तक…उसकी पीठ पर आंखें जमी रहीं। यह भी नहीं कि उसकी तरक्की की बात सुनकर खुश न हुआ हो—यह लड़की अपनी पीड़ा से उबर रही है, यह खुशी की बात थी। पर फिर भी एक उदासी-सी भी सरक आयी थी। पता नहीं क्यों, सुनंदा उसे अच्छी भी लग रही थी और बुरी भी।…वह गेट तक पहुंच चुकी थी। और वह सूखे दिल से सोच गया था बहुत पहले की एक बात—

इसी गेट को देखते, बरामदे में सुनंदा के साथ खड़े उसने एक दिन सोचा था कि—वह यहां खड़ा होगा और सुनंदा इंपाला में बैठ पास से गुजर जायेगी—सिर्फ़ हाथ हिला अभिवादन का उत्तर देते हुए। और आज उस बात की संभावना एक सच बन गयी है।…और सब से बड़ी बात—तब तक वे आज की स्थिति तक नहीं पहुंचे थे। कितने अचानक ढंग से कितनी बातें बदलती हैं !

…गेट पर धूल-सी उड़ रही है और शाम के उतरते साये हैं—और सुनंदा आंखों से ओझल हो चुकी है। कितना भी चाहे पर वह इस नामालूम सुनसानियत को मिटा नहीं सकता। जो सुनंदा की खुशहाल चाल-ढाल को तुलनात्मक दृष्टि से जांचने के वाद दिल में चली आयी है या जिसमें शायद खुश ज़िंदगी तलाश न पाने की किसी हार का भी काफी हिस्सा है। पता नहीं! वह भारी-भारी कदमों से चलता ऊपरी मंज़िल पर जाने वाली सीढ़ियां चढ़ने लगा था।

और ऊपर पहुंच अगला प्रिंट तैयार होने के इंतज़ार में यूंही खाली वैठ हुए एक आतंकित दुराशा ने उसके मस्तिष्क को पूरी तरह कस-सा दिया था। तभी याद आ गयी थी सुरेश भाई की वह वात—जो कल शाम ही उससे कही गयी थी, 'वैसे तुम साथ न भी दो, हम तो अपना काम पूरा करके रहेंगे फिर वाद में तुम पछताना।'

'पछताना!'—धमकी की तरह का शब्द। कितना वदतर! जैसे किसी काले भविष्य को ऐन सामने रख दिया गया हो। और यह वात उसे जानलेवा सच लगती है कि भविष्य की समझ में न आने वाली कोई डरावनी शक्ल ही वुज़दिली देती है।

वह कितना लड़खड़ा-सा गया था…हां भई, पछताऊंगा ही। मकान छिनेगा, पत्नी विलखेगी, वच्ची इतने अभावों में कैसे पलेगी। मैं एक निकम्मा ही सिद्ध होऊंगा।…पर इतने सारे वाक्यों को कह देने से भरसक स्वयं को रोकता भी रहा। और फिर जल्दी से दिमाग अपना वचाव भी गढ़ गया, "आप लोगों को डर नहीं लगता। मुझे तो लगता है।"

सुरेश भाई हंसे थे। किसी भी डर से दूर—वड़ी निर्भय हंसी। …और जाने क्यों अव इस हंसी को परे धकेलते ही एक दूसरी हंसी भी आंखों के सामने चमक-चमक गयी थी…सुनंदा की हंसी! वड़ी निडर हंसी! और फिर याद आ गयी थी वही वात…हर कीमत चुका अभीष्ट को सिमेट लेने की वात। वह भी इतनी निडरता-सहित कि किसी उलझाव या हीनता की भी कोई गुंजाइश ही न वचे।

पर अव वह क्यों सोच रहा है सुनंदा के वारे में! क्या इसलिए

कि कहीं वह टूटता भी है, यह सोच-सोचकर कि घबराहट की वीरानियत में वह सुनंदा के कितना करीब हो गया।—एक व्यर्थ का चमकीला आकर्षण !

पर सुनंदा को झटक भी दे तो भी उबर नहीं पा रहा। मन के विरुद्ध जाने की शुरुआत का परिचय दबोच रहा है। फिर-फिर कानों में चुभती है सुरेश भाई की वही निर्भय हंसी या याद आती है अपनी बिखरन या फिर पिचपिची तंगहाली।

और रात को वह बस की ऊपरी मंज़िल में बैठा लौट रहा था तो बेहद कम सवारियों वाली बस की तेज़ खड़खड़ाती स्पीड दिमाग में भी बज रही थी। बहुत पहले कहीं एक पुरानी चीज़ पढ़ी थी—'तुम अपने जहाज़ में बैठे किनारे पर लौटते हो तो कोई यह पूछने को उत्सुक नहीं होता कि तुमने कौन-से तूफानों को सीने पर झेलते हुए मुकाबला किया, किन छुरी-सी आंधियों ने तुम्हारे सीने को घावों से भर दिया···सब यही पूछते हैं कि तुम जहाज़ में भरकर लाये क्या ? तुम्हारी उपलब्धि क्या ?

···नीचे फिसलती खामोश सड़क। अंधेरे में डूबे मकान और दिल में हथौड़ों-सी थड़-थड़···हां, तुम लाये क्या, उपलब्धि क्या ? ओह, वह घिर रहा है।

उन्हीं लोगों की बातें ठीक लग रही हैं। ठीक-गलत, ठीक-गलत··· वह अपने को शटल की तरह कभी ठीक की तरफ फेंक देता है तो कभी गलत की तरफ। आज वह अपने विचार किसी डायरी के पन्ने पर स्याह करना भी चाहे तो भी स्पष्ट कुछ नहीं उतार पायेगा। पर खिड़की से भीतर आ रही तीखी हवाएं पुराने पन्नों को पलट रही थीं या कि वह खुद को ही उलट-पलटकर जांच रहा था—'मुझे नौकरी कब मिलेगी !'···'मां, तुम्हें यहां कब ला सकूंगा !' ··· 'कितना भयंकर दुख मिला है तुम्हें ! मैं ताऊ जी से बदला लेकर रहूंगा···और वह पिताजी—कायर पिताजी ! उनके शिकंजे से तुम्हें बचा लूंगा···मैं जी भरकर मेहनत करूंगा···'

पर आज वह खुद ही पन्नों का जवाब दे रहा है···मेहनत तो गधे

करते हैं और वे गधे ही वने रहते हैं। मेहनत करने से क्या···

और पन्ने फिर फड़फड़ाने लगते हैं—'मां ने मंजूषा को नहीं देखा। काश, देख लेतीं। अपनी आदत के अनुसार धन्य हो जातीं ऐसी वहू पाकर।' ···'क्या करूं, सोचा था पहले वहन की शादी के लिए रुपया इकट्ठा कर इस ज़िम्मेदारी से मुक्त होऊंगा। मां नहीं तो मुझे ही वहन की ज़िंदगी संभालनी है। पर···पर मंजु नहीं रुकेगी। मैंने अभी शादी नहीं की तो गुम हो जायेगी···कहीं खो जायेगी।' ···पन्ने फड़फड़ाते रहे और वह निढाल-सा खिड़की पर सिर लुढ़काये वैठा रहा।

घर पहुंचा तो खिड़की से झांकता घुप्प अंधेरा। मंजु सो गयी क्या! धीरे से लैच-की दरवाजे में घुमायी। दवे पांव अंदर आया। क्यों डिस्टर्व करे मंजु को।—उसका नाइट-सूट भी अव पहले की तरह याद से पलंग के पायताने नहीं रखा जाता था, उसने सिर्फ जूते ही उतारे और पलंग के हिलते तख्तों को—आवाज़ होने से वचाने की कोशिश करता धीरे से पलंग पर आ लेटा था। पर लगा, मंजु सोयी नहीं है। वस वोलना नहीं चाहती।

वापस आ जाने का नयापन भी गया। हालांकि पहले जैसा कोई झगड़ा न करने की वात इसने ज़रूर तय की होगी मन ही मन। पर वह भी अपना घर वचाने के लिए, प्यार वचाने के लिए नहीं।—वुझे दिल से सोच गया था।

···अंतर की दुनिया निःशव्द है। कोई चमत्कार ही इस जड़ता को तोड़ सकता है···हां जानता है, घर-भर में कोई अभाव न रहे तो झटके से सव वदल जायेगा। ठीक-ठाक हो जायेगा···वोलो माई लव, डीयरस्ट, स्वीटस्ट···वोलो, मेरी सव कुछ···वही प्यार विखरा दो मुझ पर···जहां यकीन हो सिर्फ यकीन।

···और वह अपने ही शव्द-जाल में माथा तोड़ता रहा। साथ ही तिगुने-चौगुने आवेग से मंजु से प्यार कर रहा था। उसकी शारीरिक प्रतिक्रियाओं से ही जैसे कोई जवाव मांग रहा था। उत्तेजना पहले जैसी पर कितना फर्क! यह वहशी उत्तेजना दिमाग की हस्ती मिटा सिर्फ एक जिस्म वन गयी थी। तनाव से मुक्ति के वाद यही पाया कि वह

पसीने से लथपथ है और मंजु झटके से अलग हो गयी है, कोसते हुए—'सच, क्या-क्या कर रहे थे अभी ? ऐसे तो कभी न थे···' वह मुंह मोड़ पलंग की पाटी पर सिर रखे बुदबुदा रही थी या सुबकने की तैयारी में थी—'ऐसे ज़ंगली तो नहीं थे। कभी नहीं···'

क्यों किन्हीं नामालूम जवाबों की खोज में भटक रहा था। खोज में निर्ममता चाहिए। हां, खोज निर्मम बना सकती है। और वह थकान की नींद में डूब रहा था।

सुबह रात वाली दानवी बदहवासी गायब थी। उठते ही घरेलू ऊष्मा की लहर तसल्ली दे गयी। रसोई से आ रही खटपट की आवाज़ें व्यवस्थित होने की सुरक्षा दे रही थीं—और बीच में 'ममा'···'ममा' के स्वर—रिकी की भोली आवाज़ें।

मंजु नाश्ता तैयार कर रही थी तो वह रिकी के साथ बैठा उसके खिलौनों में दिलचस्पी दिखाता उससे लाड़ करता रहा। उसकी हर फरमाइश पूरी की। 'नहीं'—'पा-पा गोदी···' वह गोदी से उतरती ही न थी तो कितनी देर उसे लिये बाल्कनी में खड़ा रहा।

बाद में वे नाश्ता कर रहे थे तो उसे लगा कि किसी खीझ से मंजु का चेहरा भरा-भरा सा है। जबकि वह मंजु को इस बारे में कुछ बताना चाहता था कि उसे घेरने की कितनी कोशिशें हो रही हैं और सगर्व यह भी बता देना चाहता था कि वह वैसी साजिश में बिलकुल नहीं शामिल होगा। लेकिन अब सोच रहा था, सब कहने से फायदा क्या ! यह पहले ही परेशानियों से दुखी नजर आ रही है और भी चिंतित हो उठेगी। जब प्रिंट-करेक्शन का काम खत्म हो जायेगा तब कभी बता देगा वरना वह घर में नहीं होता और यह यही सोचती रहेगी कि 'कहीं वहां लैब में ही किसी गड़बड़ में फंस तो नहीं गया मैं।'

लेकिन थोड़ी देर बाद मंजु दूसरी ही एक अप्रत्याशित बात का जिक्र ले बैठी थी, "तुम्हारी पिक्चर जल्दी ही रिलीज हो रही है न, तो अभी से प्रीमियर के लिए सीट तय करवा लो।"

"···पर सुनो, एक भी बढ़िया साड़ी नहीं। दो-तीन जो थीं वे

पुरानी हो गयीं। क्या पहनूंगी उस दिन ?"

"ओफ-ओ मंजु, उस दिन तुम पर फ्लैश वल्व नहीं चमकेंगे। पहन लेना इन्हीं साड़ियों में से कोई अच्छी-सी।" वह झल्ला आया था।

मंजु अंगारित दृष्टि फेंकती बोली थी, "हां-हां, मालूम है। हम पर कौन ध्यान देगा। तुम चीफ एडीटर होते तब भी कोई बात थी और साड़ी का ऐसा भी क्या है। ममी से मंगा लूंगी।"

जैसे फिर उसे अपनी स्थिति का सपाट रूप दिखा दिया गया हो—हर बात में उसकी असमर्थता और भी चमक उठती है जब मंजु अपने मां-बाप के घर से सब कुछ उपलब्ध कर पाने की क्षमता का यूं चुटकियों में बयान कर देती है।

पर वह ये सब क्यों सोचे ! यहां और कुछ क्या कम है सोचने को !…मकान छिनने का डर, राशन की फिक्र, बनिये का बिल—और हाथ में स्लाइस का एक नरम टुकड़ा थामे रिंकी भी जैसे उसकी तरफ टुकुर-टुकुर देख रही है। किसी दृढ़ सुरक्षा को पाने की आस में ही। ओह, इतनी-इतनी बातें हैं सोचने को !

—और शाम को लौट रहा था तो फिर खाली हाथ ही। पर घर जाने को बिलकुल मन नहीं। नहीं जायेगा। वह भी आज नहीं सह पा रहा कि मंजु पूछे और वह फिर कह दे कि कोई इंतज़ाम नहीं है।

और पता नहीं यह क्या है कि कभी-कभी तो सब ठीक-सा चलने लगता है। पर फिर बीच में भयंकर तंगी के दिन आ जाते हैं कि टलते ही नहीं। और अब तो बिलकुल ही अंधेरे-से दिन आ गये हैं…और उसे एक ही बात सुझायी दी थी—अपनी रिस्टवाच गिरवी रख देगा।

फिर वह उसी दुकान पर पहुंचा था जहां काफी वर्षों पहले इसी तरह आड़े वक्त काम बन गया था। और डेढ़ सौ रुपये जेब में रखे तो एक डूबती उदासी-सी भी थी कि क्या पता अपनी चीज़ छुड़ा भी सकेगा या नहीं।

और वह सीधे घर आ गया। रिंकी को सुलाकर मंजु उदास चेहरा लिये कुछ कपड़ों के टूटे बटनों की मरम्मत में लगी थी।

उसे देखते ही बोली, "सुनो, मैं कुछ दिनों के लिए मौसी के पास

अहमदाबाद ही चली जाती हूं। इस तरह अपनी थोड़ी बचत भी हो जायेगी।"

मंजु के चेहरे पर छायी समझदारी ने उसके भीतर कुछ तार-तार कर दिया। इससे बेहतर तो मंजु की नासमझी वाली ज़िद्दें ही थीं। इस समझदारी ने तो उसके निकम्मेपन को उघाड़-सा दिया है।

उसकी बात का जवाब दिये बिना नोट उसे थमा दिये थे, "लो ये रखो।" रिस्टवाच के लिए सोचा ही था कि पूछेगी तो कह देगा एक दोस्त ने मांग ली है कुछ दिनों के लिए।

"वैसे तो तकरीबन दो हज़ार मिल जायेगा न इस काम में?"

"हां," वह एक झटके में ही कह गया, "और बाद में भी कोई फिक्र नहीं। दीनू साहब को दो-तीन फ़िल्में मिल रही हैं।"

घर पर छायी उदासी कितनी जल्दी खिसक सकती है! कितना आसान है मंजु को यानी घर को चिहुंका देना!—मंजु पर खुशी की रंगत चढ़ गयी थी। चलने, बैठने की निर्जीवता में खनकता-सा लचीला पन आ गया था।

पर वह अचानक भीतर से खाली भी हो रहा था···क्या सचमुच उसके साथ ये सब हो रहा है। अपने घर में ही बनावट वाले रंग-ढंग। लेकिन क्या करे, नहीं सही जाती हर वक्त की निराशा और थकावट। थोड़ी देर के लिए गढ़ी हुई खुशी भी मिल जाये तो उन लंबी तकलीफ़ों को सहने का कुछ दम तो पा सकेगा।

उसी शाम का खुशी-भरा मूड ही था जो अगली दोपहर तक कायम रहा। काम बीच में छोड़ घर आ गया। घर की याद बड़े ज़ोरों से आयी थी—घर, जो आज उदास नहीं होगा। मंजु, जो आज चिंतित नहीं होगी।

और फिर सारी दोपहर बड़ी अच्छी बीती थी। पहले मंजु ही उसका पहलू छोड़ बिस्तर से उठी, "मैं चाय बनाती हूं।" यह कहकर वह किसी बच्ची की तरह ही रसोई की ओर उछलती-सी भाग गयी।

चाय पीते समय और फिर उसके बाद भी जैसे उसकी ज़बान बोले चले जाने से थक न रही हो—पड़ोसियों, सहेलियों और जाने कहां-कहां

की छोटी-छोटी बातें। इस वक्त सब खुशनुमा भी लग रहा था। बातें कुछ भी हों, उसकी आवाज़ की खनक में कुछ ऐसा था जो दिमाग को ताज़ा-ताज़ा-सा बना रहा था।

पर फिर अचानक उसे लगा कि वह इतना खुश क्यों है! क्या यह खुशी अर्थहीन नहीं है। स्थिति तो वही है? और उसे घबराहट होने लगी कि क्या इतनी हद तक बात पहुंच गयी है कि बहुत खुश होना भी डर देता है।

मंजु बड़े उत्साह से बातें कर रही थी। उन चीज़ों की लिस्ट जो दिमाग में जमी है—पर ज़रा हाथ खुला होने पर खरीदेगी···बढ़िया क्रॉकरी, नये परदे और हां उसके लिए एक सूट भी सिलवाना चाहती है। पुराना एकदम फट गया है।

अब वह मंजु को क्या बताये कि यहां तो मकान छिनने तक की मुसीबत खड़ी है। वह मंजु से छिपा गया था। मकान मालिक के दूसरे नोटिस के बारे में उससे कुछ भी नहीं कहा था। इसी डर से कि वह बिलकुल ही घबरा जायेगी। और स्वयं तो वह सोच ही चुका था कि इस बारे में जल्दी कुछ किया ही नहीं जा सकता तो सोचना ही व्यर्थ है। तटस्थ बने रहो। बस, जो सामने आये उसे निभाते जाओ।

"क्या सोच रहे हो?" उसे अचानक चुप हुआ देख मंजु यकायक उसके कंधे पर उचककर बोली थी, "पिक्चर देखने चलेंगे?"

"हूं ऽ ऽ" वह खोया-खोया-सा बोला।

"हूं क्या—कह रही हूं कोई मूवी देखने चलते हैं।"

मंजु का खुश चेहरा देख, सायास उत्साह से बोला था—"कल चलेंगे। अभी लैब जाते वक्त कल शाम की टिकटें भी ले लूंगा।"
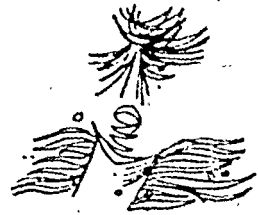
शाम चार-पांच बजे वह खाली वक्त में टहलता-सा उस बिल्डिंग के पास आया तो एक झटकीला मनोवेग उठा था—अनिता से मिलना चाहिए। इस बीच परसों ही वह दिखी थी और उसकी शक्ल ही न देखने का वह पहले वाला व्यर्थ-सा संकल्प टूट चुका था।

हालांकि तब कुछ ज्यादा बात नहीं हो सकी थी। वह थ्री-कॉयन्स' में गया था। वहीं एक मेज़ पर अपनी उस साथिन मिस जोशी के साथ बैठी थी वह।

"आज यहां लंच ले रही हैं?" अभिवादन के पश्चात औपचारिक ढंग से उसने इतना ही पूछ लिया था।

"हां, आजकल घर से नहीं लाती। सुबह उठकर खाने का यह झंझट सिर्फ अपने लिए करना बेतुका लगने लगा है इन दिनों।"···"हम लड़कियों में यही एक बुराई है। हम लोग खाना तक भी किसी दूसरे को ख्याल में रखकर ही बना सकती हैं। मिस जोशी ने कहा था और उसकी तरफ यूं देखा था मानो ऐसी बढ़िया बात कहने पर दाद मिलनी ही चाहिए।"

"यह तो आपने खूब कहा।" यह जवाब देते हुए भी ध्यान सारा अनिता की तरफ ही था···शांत-सी दिखते हुए भी जिसकी आंखों में उसे घोर अशांति की-सी परछाइयां मिली थीं।—वह बेहद दुबली लग रही है। उसने गौर किया कि आंखों के इर्द-गिर्द सांवले-से घेरे छाये हैं।

वह मानो पूछना भी चाहता हो—तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न।

पर फिर चुप ही रह गया और 'सी यू' कहकर राजनंद के पास जा बैठा जो उसके साथ ही वहां आया था।

और अव उस विल्डिंग तक पहुंचकर भी फिर ऊपर अनिता के पास जाने का विचार टाल गया—क्या पता, पसंद न करे उसका आना। और वात कहेगा भी क्या! यही कि मंजु आ गयी है।—और तव अगर वह मंजु से मिलने के ख्याल से घर आ भी गयी तो क्या होगा? यही न कि वह सहज दिखने का नाटक चलायेगा। सावधानी वरतेगा कि मंजु के मन में ज़रा भी आशंका न उठे—उसे ख्याल न हो कि कोई अतिरिक्त भावना कहीं है। और यह प्रदर्शनवाजी वहुत घुटन देगी।

फिर एक मन हुआ था कि अनिता से मिले, क्योंकि उसकी उस दिन देखी शक्ल आंखों के सामने दोवारा से चली आयी थी। तकलीफ-भरी अनिता की जिन आंखों को महसूस करते वह उसे झंझोड़कर कह देना चाहता था—हां माना, तुम जरा-सी भी निम्न मानसिकता को दूर फेंकती हो। पर यह भी तो मत करो, इंसान के अस्तित्व से वहुत ऊपर उठने की कोशिश भी तो न करो कि इस कोशिश का पीड़न तुम्हें जला दे।

पर यह सव कहेगा नहीं ही। क्या पता वह झट से कह दे, 'तुम मुझे समझते ही नहीं।' तव यही ज़ाहिर होगा कि उनके वीच कोई दिमागी संपर्क नहीं वना है।—और ऐसा महसूस हो, यह वह नहीं चाहता।

वह विना उससे मिले लौट आया तो यही सोच रहा था कि अनिता के विषय में ज्यादा सोचना वेकार ही है। वह उसे ठीक-ठीक समझ ही नहीं पा रहा। लेकिन फिर भी करीव उतना ही पाता है—और यह कोई अवूझी भावना है!

•
•

वह तेज़ कदमों से लैव तक चला आया। उसे यह भी ध्यान आ गया था कि अव तो काम की रफ्तार वहुत वढ़ जायेगी। दिन में दो-दो

था'''साले को ढंग की एडीटिंग तो आती नहीं अभी तक भी, जूते चाटते तो काम सीखा है। पर आज तक वह तो सबके सामने उन्हें मार्क का एडीटर ही कहता रहा है।

वह नीचे आकर चेकिंग का काम निबटाता रहा। पर कुछ पता नहीं आसपास कौन है। किसने उससे क्या बात की है। दिमाग में लपटें-सी जल रही थीं और मन में आंधी-सी चल रही थी।

क्यों, आखिर क्यों उसके साथ ऐसा हुआ है'''इतना निरीह, इतना पिटा हुआ तो कभी नहीं बना'''यह सब कैसे हो गया और अब आखिर होगा क्या !—दीनू के पैर पड़ जाये ? पर नहीं, यूं तो वह उसे एकदम ही दबा हुआ जान, कीड़े जैसा जान परे फेंक देगा। तो फिर क्या तरीका है'''कुछ नहीं, कोई तरीका नहीं।

काम खत्म होते ही गिरता-पड़ता पानी के एक गिलास के लिए कैंटीन में आया। देखा, मनोचा उसके नज़दीक आ पहुंचा है, "अरे अच्छा हुआ तुम अभी मिल गये।"

फिर उसने जेब से एक सफेद लिफाफा निकाल उसे थमा दिया, "वरना मैं तो भूल ही गया था कि दीनू साहब ने यह चिट्ठी तुम्हारे नाम की है। वह जल्दी में थे ! दो दिन के लिए पूना जा रहे थे। यह चिट्ठी तुम्हें देने को कहा था।" उसने कठोर चेहरा बनाये ही लिफाफा जेब में रख लिया।

"बाद में पढ़ोगे ?" दबे व्यंग्य की कौंध से बेंधती मनोचा की छिपती-दिखती मुस्कराहट साफ बता रही थी कि वह कितना कुछ जानता है।

पर उसे भी अपना अभिनय चलाना था, "कभी भी पढ़ लूंगा। अभी तो कुछ खाऊंगा यार, बहुत भूख लगी है।" उसने बड़ी लापरवाही दिखाई, हालांकि चिट्ठी द्वारा अपनी निश्चित बेकारी की संभावना वाली चोट और फिर इस चिट्ठी को भी मनोचा द्वारा पाने से अपमान-भरी दोहरी चोट उसके दिल और कनपटियों पर बज रही थी।

"बड़ी भूख लग रही है। मैं तो कहीं बाहर खाना खाने जा रहा

हूं।" फिर वह बिना मनोचा की ओर देखे ही वहां से चला आया था।

सड़क अभी पूरी तरह सुनसान नहीं हुई थी। बाहर आते ही उस चिट्ठी को पढ़ने की तिलमिलाहट मचने लगी। इस वक्त तक खुले हुए रेस्तरां में आ गया।

कॉफ़ी का आर्डर देकर मेज़ की संगमरमरी सतह पर कोहनियां टिकाये चिट्ठी निकालकर सामने रख ली। उसे एक बार पढ़ा, दूसरी बार और फिर तीसरी बार पढ़ गया।—सारे लफ्ज़ किन्हीं गोलियों की तरह माथे में धंसते चले गये थे। कॉफ़ी के प्याले में से सिर्फ दो-चार घूंट भरकर उठने ही लगा कि राजनंद अंदर आया था।

"तुम कहां इस वक्त ?"

"सी० के० जी के काम की भागदौड़ और क्या !" राजनंद के चेहरे पर थकावट का पसीना था, "कल उनके कुछ खास मेहमान आ रहे हैं पिक्चर देखने। थियेटर बुकिंग करनी थी। अभी यहां न करता तो कल सुबह सिने-मिनी, ब्लेज, नावल्टी—कहां-कहां भटकना पड़ता बुकिंग के लिए।"

"यहां लैब में बुकिंग हो गयी ?"

"हां, लकिली थियेटर खाली था···उफ़, सुबह से काम पर निकला हूं। खाना खाने तक का होश नहीं।"

"······"

"रिलीज पास आ गयी है। पब्लिसिटी का काम—और भी कितने काम।"

समझ गया। राजनंद सी० के० जी का बहुत ही अपना हो चुका है।

"भई क्या है खाने को। कुछ अच्छा बचा भी है।" काउंटर पर ऊंघते मालिक से राजनंद पूछ रहा था।

"साब, झूठ नहीं बोलेगा। पिशल सब खलास है इस टैम।"

"ओह, तब नहीं।" फिर राजनंद उसकी ओर देखते हुए बोला, "दाल तो पानी मिलाते-मिलाते बढ़ती चली गयी होगी। अब तो पानी

में दाल होगी। चलो यार, जब यहां कुछ नहीं तो फिर खाने-पीने का अच्छा प्रोग्राम ही बना लिया जाये। बोर हो रहे हैं।"

अपनी भटकी हालत में वह उसके साथ हो लिया। वह उसके साथ ही कहां-कहां पहुंचा, कितना ठर्रा कौनसी भिनभिनाती जगह पर सुड़क लिया, कहां तंदूरी मुर्ग गपका—कुछ होश नहीं। बस, वह जैसे अपने दिमाग को महसूस ही न कराना चाहता हो।

पर सब कुछ भुला देने के लिए इन सब हरकतों के बाद भी लौटते समय हालत बुरी थी। इतना निराश, इतना कुंठित था कि नशे ने हर चीज भुला मन को उठाया नहीं बल्कि और भी गिरा-सा दिया था।

राजनंद को तो गिरगांव जाना था। उससे अलग होने के बाद वह चौराहा पार कर हाजीअली के बस-स्टॉप की तरफ आया था। क्या बजा है···हाथ पर घड़ी नहीं। कितनी चीजें और गिरवी रखेगा और है भी क्या खास रखने को।···एक लंबी, बहुत लंबी समस्या हवाओं में कांप-सी गयी।

क्या बजा होगा?—बारह से काफी ऊपर ही समय होगा। पर घर नहीं जा सकता। मंजु लड़ाई ठान लेगी उसका नशा देखकर। हालांकि नशे जैसा नशा है ही कहां? समस्या इतनी विकट, इतनी राक्षसी थी कि दिमाग पूरा नशेड़िया हो ही कहां सकता था।···समंदर में चली गयी सड़क पर बढ़ जाना चाहा। सीढ़ियां उतर रास्ता सीधा था। लहरों के बीच-बीच चलते भीगी, गीली हवाएं जिस्म से टकरातीं तो जीवित होने का एहसास कुछ तो जीवित हो उठता।

पर दिमाग थोड़ा-सा जाग्रत होता तो फिर वही···आखिर सब विरुद्ध क्यों चला जाता है? सारी मेहनत पर दीनू के लिखे कुछ शब्दों ने कितनी सफाई से पानी फेर दिया—'अफसोस है इस नये सेट-अप में तुम्हें नहीं लिया जा सकता···सो सॉरी···खैर, तुम एक जगह ट्राई कर लो। मैं उनसे कह दूंगा। पता है न, वह टॉप के एडीटर हैं···अभी सेकंड असिस्टेंट का चांस भी मिले तो ले लो।'

—यानी वह फिर से पीछे धिकल जाये खुद ही। इतने दिनों से जो पोज़ीशन बनायी, उस पर राख डाल दे। दीनू ने तो यह राय देकर

और भी पटक देना चाहा है, मानो वता देना चाहा हो कि खामखाह ही खुद को ब्रिलिएंट समझता है। चुटकियों में उसे गिराया जा सकता है। ···दूर···दूर तक अंधेरा है। सूझ की कहीं कोई रोशनी नहीं।···तो क्या नियति जव चाहे जिधर मोड़ दे। वह स्वयं कुछ नहीं···'ओह वेटर फिनिश माईसेल्फ'···वल्कि मरना है ही, होगा ही—और कुछ हो भी नहीं सकता। हमेशा के लिए सारा झंझट ही खत्म कर डालो।

···सवके सामने इतना जलील, इतना वौना, भूखों मरता हुआ और परिवार को मारता हुआ वन जाने से तो यही अच्छा होगा··· 'वेटर फिनिश माईसेल्फ।'—निर्णय पूरे पंजे फैलाता उसे जकड़ता जा रहा था।···करना क्या है ? वस एक-दो कदम—इस जरा-सी सीमा-रेखा को उलांघना है और लहरें अपने-आप ही उसे लील जायेंगी। वड़ी सुविधा यह भी होगी कि मरने पर डरपोक नहीं कहलायेगा। इस सड़क पर चलते ऐसे एक्सीडेंट होते ही हैं इन दिनों जव ये लहरें पूरे ज्वार पर उछल आदमी को वहा ले जाती हैं।···वह लहरों की छुअन को टखनों पर महसूस कर गया।

वड़ी तेज़ हवाएं माथे से टकरायीं। जिनकी सन-सन में कई-कई वातें भी टकरायी थीं···मां!—यानी कितनी पुरानी कहानी। अपने वच्चे को यूं लहूलुहान हुए लहरों की भेंट चढ़ते देखती तो चिल्ला पड़ती। दुख से वेहोश हो जाती। पर वह अव नहीं है। किसी का कलेजा हाहाकार से चीरा नहीं जायेगा।

और मंजु को कैसा लगेगा! हद है, मंजु के वारे में एकदम ठीक अनुमान नहीं लगा सकता ?···लहरों की गहराइयां दूर नहीं···पर अपनी ही कितनी आकांक्षाएं सिसकारियां मारती, दिशाओं में फुंफकार उठी थीं—तो अंत यही था क्या ? अनिता के स्वर वहुत दूर थे, 'मैं मानती हूं, तुममें जीनियस का-सा दिमाग तो है।'

'पर अनिता, टेलेंट क्या चीज होती है ? जव तक आधार न मिले वह वेहाल व्यर्थता है, वोझ है। और अनिता तुम तो खूव वातें वना सकती हो। शिला-सी हो, स्वयं में तल्लीन, हर थपेड़े को मुंह चिढ़ाती —मैं ऐसा नहीं वन सकता। इसी दुनिया का हूं तो इसकी चीज़ों से

अलग कैसे हो सकता हूं।'

...बस, एक ही क्षण की देर और सौंप देना था खुद को इन लहरों में। 'पर इसी दुनिया का हूं', यह बात स्वयं को क्यों याद दिला रहा है...वह बचना चाहता है! अपने से ही धोखे करता बातें गढ़ रहा है—इतने विरक्त क्षणों में भी! कल घर-बाहर यही कहेगा कि मुझे रिंकी याद आयी थी, उसका मासूम चेहरा याद आया था और मैं नहीं डूब सका।

पर यहां से हिल नहीं सकता—मौत को सामने रखकर ही वह अपना बचाव पा सकता है। तो उसे तीस हज़ार कैसे मिल सकते हैं? एक प्रिंट का इतना ज्यादा! ...कितना आसान है। अच्छा-बुरा सब साथ-साथ लेकर चलो तो सब कुछ आसान है, बहुत आसान।—एक लंबे अंधेरे पाइप में फिसलते पल-भर में ही बाहर के उजाले में आ गया पर तेज़ी से बाहर पटका यूं गया कि पसलियां तक खचखचा जायें। बचाव का तरीका हाथ में आया तो दिमाग की तपन बर्फ बन गयी। उसे बड़े जोर से मिचली आयी। शराब गंदी थी या कि खुद ही आज पचा नहीं पाया और उसने वहीं लहरों में ओकते हुए छाती पर हाथ रख लिया था।

●

"मुझे और कुछ नहीं पूछना। पर अपना कसूर तो पता चलना चाहिये न।"

दीनू साहब ने यूं रूखे भाव से देखा मानो वह सुबह-सुबह ही क्यों तंग करने चला आया है।

"कसूर की बात क्या। मैंने तो कहा न सेट-अप ही ऐसा है। एक आदमी ही अपने साथ रख सकता हूं।"

"पर सर, मैं कितनी मेहनत से काम करता रहा हूं।"

"तुम्हें पैसे मिले हैं उसके।"

वह उनका मुंह देखता रह गया। अब क्या कहे! अगर कहे कि आपका कुछ काम बिना पैसे लिये भी किया है तो भी यह आदमी बड़ी

आसानी से कह सकता है कि किया तो क्या, कुछ फायदा नज़र आता होगा तो ही किया होगा। मैंने कोई पिस्तौल दिखाकर तो काम लिया नहीं तुमसे।

परसों रात जब मृत्यु-गंध में सांसें सिमेटता तूफानों के बीच जाकर ज़िंदा आ गया था—वह रात और कल का दिन कितने भयंकर, हाहाकार मचाते द्वंद्वों के बीच व्यतीत हुआ था। कल रात उसे पता चला कि दीनू बंबई लौट आया है। इसीलिए बिलकुल निर्णयात्मक बात जान लेने के लिए ही तो सुबह-सुबह ही चला आया है।

"सर ··· !" वह बिलकुल घिघिया गया था, "प्लीज़, सर, मेरी बात तो सुनिए। देखिए, कितनी मुश्किल हो जायेगी।"

"तो अभी यह काम कर लो। माथे से दूर सिर तक फैली उनकी गंज जैसे कुछ और चमक उठी थी किसी छिपे षड्यंत्र की लहर से, "वहीं चले जाओ। जहां मैंने बताया है। सेकंड असिस्टेंट रख लेगा वह तुम्हें। भई, आदमी छोटे से ही बड़ा बनता है।"

क्या खूब तेल में भिगो-भिगोकर कोड़े मार रहा है यह आदमी ···जैसे वह कभी छोटे आदमियों वाली मेहनत से घबराया है या कि उसमें कभी थोथा गर्व रहा है। पर यह तो चाहता ही यह है कि लोग बातें बनायें, कहें कि प्रतिभाहीन नालायक आदमी था जभी न पहुंच गया उल्टा पिछली सीढ़ी पर। यह खूब जानता है कि यूनिट में उसकी कितनी धाक जम गयी थी। सब उसकी प्रतिभा पहचान गये थे।

पर उसे जो यूं झटका जा रहा है उसने तो दीनू की जगह कभी नहीं छीननी चाही। एक बार राजनंद ने इसके लिए उकसाया भी था तो उसको ही झिड़क दिया था कि वह अपने ही बॉस की जगह छीन लेने जैसा काम कभी नहीं कर सकता। तो क्या अपने ही मन का चोर इसके भीतर कुलबुलाता होगा? संजय की बात याद आयी थी—इस दीनू ने सच ही अपने बॉस का पत्ता काट उसका काम छीना होगा।

—ओह, इससे रुपये भी तो उधार ले रखे हैं। काश, इस वक्त उतने रुपये पास होते तो इसके मुंह पर मार देता। कितना अपना-

सा बना रहता था पिछले दिनों। क्या झटका देना था इसीलिए ही मीठे बोलों की मदद से संतुलन कायम रखना चाहता था अपनी कार-गुज़ारियों का ?

"क्यों, क्या सोच रहे हो ? काम करना है फिर वहां ?"

वह यह भी खूब जानता था कि जिस जगह के लिए कहा जा रहा है वहां भी उसे काम मिलने से रहा। वह पहले ही फोन करके पूछ चुका था और उस एडीटर ने जवाब दिया था कि उसके यहां सिर्फ क्लैश में कुछ दिनों का टेंपररी काम है…पर वह दीनू के सामने स्वीकारेगा तक नहीं कि वह नीची पोज़ीशन पाने के लिए राज़ी हो सकता है।

"वह देखी जायेगी," अपनी आवाज़ को कटुता से नहीं बचा सका, "पर आप तो बताइए—मुझे हटाना है यही आपका आखिरी फैसला तो नहीं होगा ?"

जल्दी से पल्ला झाड़ बला टाल देने का भाव था, "मैंने तो बता दिया। मेरे यहां कोई स्कोप नहीं।"

"पावटे होगा चीफ ?

"नहीं, कोई नहीं। उनका इतना बजट नहीं। एक ही असिस्टेंट रहेगा।"

"तो जो एक होगा वही तो चीफ होगा न," व्यंग्य का तीखापन आ ही गया था और वही दीनू को और भी भड़का गया।

"तुम यहां सीरियस बातों का मज़ाक बनाने आये हो ?"

"ओह, नो सर—आई…" वह एकदम से घबरा-सा भी गया था, "मैं तो…"

"शरद, इट इज़ फ़ाइनल।"

"हूं, तो फैसला करके ही बैठे हैं।"

"……"

"आपने अच्छा नहीं किया !"

"डोंट…डोंट डिस्कस एनीथिंग विद मी…" दीनू गुस्से से तमतमा गये थे।

"ठीक है।" वह भी एकदम बेधड़क हो गया था, "जहां रीज़निंग न मिले वहां गुस्सा ही दिखाया जाता है···और···और यही समझूंगा कि आपको किसी अच्छी चीज़ की कोई कद्र नहीं।"

"कहना क्या चाहते हो?"

"वाय एंड वैड लक।" उनकी ओर सारी भर्त्सना फेंक वहां से उठ आया था।

दीनू से साफ जवाव पा लेने के वाद अव वह एक निस्तेज विद्रोह से भरा वियावान मन लिये लौट रहा था। विलकुल टूटे हुए होने की इन यातनामयी घड़ियों में घर पहुंचा तो मन हुआ मंजु को सव वता दे। कह दे—मंजु, सव गलत हो चुका है। एकदम गलत। अव हम शायद ही वचें···

लेकिन मंजु के चेहरे पर छायी मुस्कानों की मुलायमियत को यों एक ही चपेट में नोच नहीं सकता था। ओह, कितनी दमघोट विवशताएं··· अव तो अवश्य मर जायेगा अगर यह नहीं जान पाया कि जीना ही क्यों चाहिए···हां, इस जीने का अर्थ क्या! इस जीवन, इस दुनिया का अर्थ क्या!—जहां अगर कोई ढंग से एक औसत ज़िंदगी चाहे तो उसे भी न पा सके।···अव तो सव खत्म हो चुका और वह निर्जीव वना पलंग पर लेटा हुआ था।

"तवीयत तो ठीक है?" मंजु ने आकर पूछा था।

"क्या हुआ, ठीक तो हूं।···हां, सोचता हूं तुम चेंज के लिए कुछ दिन मौसी के पास रह ही आओ। अभी और भी काम वढ़ जायेगा तो

तुम्हें यहां बहुत अकेले रहना पड़ेगा।"

मंजु हैरानी से देखती रह गयी कि वह यह बात खुद कैसे कह रहा है। वह बिगड़-सी गयी, "तो क्या हुआ, अब तो आदत भी हो गयी देर-देर तक अकेले रहने की। हां, तुम्हीं अकेले होना चाहो तो बात दूसरी है। या बाजार में खाना खाने का चस्का लग गया हो···"

"अरे कहां, मैं तो कभी भी न चाहता कि तुम जाओ! वह तो तुम्हारे लिए ही···।" उसने हंसना चाहा पर हंसी की जगह बड़ी खायी-खायी-सी हंसी ही गले से फूटी थी।

पलंग के पायताने बैठी मंजु का चेहरा रूखे, बिखरे, खुले बालों के बीच बड़ा छोटा और प्यारा-सा लग रहा था। सब कुछ भूल मंजु में खो जाना चाहा। पर एक ही झटके में उसे समीप खींच लेने वाला हाथ स्वयं ही रुक गया। आंतरिक तौर से बेहद थका-सा है···सचमुच इस वक्त कोई उत्कट इच्छा है भी कहां मंजु के लिए···बस, खो ही जाना चाहता है न! मंजु घबरा जायेगी अपने तन पर चली आयी किसी निर्मम बेचैनी से। उसे क्रूर कहेगी। चलो छोड़ो।—तो क्या उसकी नाकामी उसे हिंसात्मक बना रही है! ओह, नहीं, यह भी उलट हो रहा है।

"मैं चलूं?"

"कहां?"

"कहीं भी···मतलब लैब।" उसने अपना वाक्य जल्दी से सुधारा।

वह जूते पहन उठा ही था तो मंजु ने पूछा, "आओगे कब?"

"रात को ही।" चलते समय उसने मंजु को खूब ज़ोर से बांहों में भरकर भींच लेना चाहा। लेकिन जाने क्यों इसकी जगह खिलौनों से खेलती रिकी के गाल थपथपा दिये थे और दरवाज़े की ओर बढ़ आया।

"क्या सचमुच चाहते हो जाऊं! तो मम्मी को फोन करूंगी।"

फिर से वही बात छेड़ दी गयी है···वह अटपटा-सा आया···खुद भी क्या पता है कि उसे क्या करना है! अगर प्रिंट गायब करने के भयंकर खेल में हाथ डालना है तो कम से कम बेखबर मंजु को घर में

इन दिनों सहन नहीं कर सकता ।—कुछ ठीक निर्णय सोच न पाने की अपनी असमर्थता से ही चिढ़ उठा, "देखेंगे, सोचेंगे !" कहकर चला आया । लगा किसी वहुत वड़े ववंडर का साया घर पर और उन दोनों पर मंडराने लगा है ।

•
•

तंग आकर वह खुद ही सी० के० जी के घर चला गया । सोचा था इतने प्रिंट करेक्ट हो चुके, उसके सारे रुपये अव तक मिल जाने चाहिए । कम से कम सी० के० जी तो दिलवा ही देंगे ।

और वह मिले भी स्नेहपूर्वक । यही शायद उनकी मेहरबानी भी थी । कहा यही कि 'अच्छा, इतना काम हो चुका । हां तो सुरेश से कहो । देखो भई, अव्वल तो मैं घर पर धंधे की वात करता नहीं । चलो तुम आ ही गये हो तो कोई वात नहीं । पर यह समझ लो कि इन सारी छोटी-मोटी पेमेंट्स का मुझे तो कुछ पता रहता भी नहीं । सुरेश भाई ही देखेंगे ।'

तव सोचा था कि चलो सी० के० जी की ओर से सुरेश भाई को आर्डर दिया ही जा सकेगा कि अव तो उन्होंने कह दिया है ।

पर कल इतना सब कहने के वाद भी सुरेश भाई ने कह दिया था कि दो-तीन दिन वाद ही पेमेंट हो सकती है । फिर वह प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था ।

लेकिन अव वह सोच रहा है—वात ऐसी वन ही जाये कि किसी भी प्रतीक्षा की ज़रूरत न रहे । सचमुच हर तकलीफ मिटा देने की लालसा ही हर निजी विचार को पछाड़ रही थी ।

काम खत्म होते ही अगले प्रिंट का वक्त पूछने लैव के भीतर गया । अंधेरे कमरों में काम चालू था—प्रिंट करते रोलर घूम रहे थे । अगला प्रिंट चार वजे तक तो मिलेगा ही । लाल रोशनी वाले गलियारे को पार करने के वाद फिर उसी लंवे कारीडोर में था ।

पर आज उस अल्मारी के ठंडे लोहे को विना छुए भी महसूस कर गया क्योंकि उसी वात पर एकदम केंद्रित था । सुरेश भाई दिखे नहीं…

वस जव दिखें तभी कह देगा कि एक प्रिंट दो दिन में दे सकता है। पर क्या पता अव तक वे प्रिंट उड़ाने का काम पूरा कर चुके हों। लेकिन फिर भी दूसरा और प्रिंट चाहिए ही होगा।

और कैंटीन में सुरेश भाई तो नहीं दिखे, सूरज मिल गया था। जिससे वह अपने समझौते की वात नहीं कहना चाहता था।

धीरज हमेशा की तरह वहुत वातूनी वनता हुआ दुनिया-भर के किस्से हांक रहा था। जिन्हें सुनता, सतही दिलचस्पी दिखाता वह अपने में ही व्यस्त था।

पर अचानक उसकी वातों में एक शव्द सुनायी दिया—'सुनंदा' और वह चौंक गया था।

धीरज कह रहा था, "···अरे भाई, वही सुनंदा जो यहीं घूमती थी, तुम्हारे दीनू साहव से भी तो मिलने आती थी।

"हां···तो ?"

"तो क्या, उसी की वात कह रहा हूं। गजव की लड़की निकली। देखा नहीं, स्क्रीन में एकसाथ दो फिल्मों के इश्तहार आये हैं। और दोनों में टॉप के हीरो हैं। वस, सुना है उसके वाद छः-सात कांट्रैक्ट साइन किये हैं उसने। सव वड़ी-वड़ी जगह टॉप के लोगों के साथ।"

"·······"

"एक लाख तक शूट-अप कर गयी है एकदम। अरे भई, मुझे पता होता कि यह लड़की ऐसी ऊंची जायेगी तो पहले से ही सवा रुपये में साइन कर लेता।"

वह कुछ नहीं वोला सिवा एक 'हूं ऽऽ' कहने के। इस वक्त तो वह किसी भी दूसरी चीज़ में दिलचस्पी ले ही नहीं सकता था। कोई क्या वन रहा है—यह सुनकर क्या करेगा ? और फिर सुनंदा की वात।

सुनंदा ने तो ज़िंदगी का नमूना वदल दिया था। वह एक ज्वाल, एक लपट की चिंगारी उसके दिल में जला गयी है। इस पर काफी सोचा था उसने।

—पर अव उसके वारे में सोचना नहीं चाहता। लेकिन धीरज ने

ुनंदा-सुनंदा का ऐसा शोर मचा रखा था कि दिमाग घूम गया पिछली ारी वातों की तरफ।

पर फिर यही लगा कि उन वातों के लिए कोई आकर्षण नहीं वच हा है।...उन सारे परिदृश्यों में से जो एक चीज़ वहुत तीव्रता से उजागर होती है तो यही कि कोई वहुत चमकीली तमन्ना! किसी भी ारह लक्ष्य तक पहुंच जाने के लिए सिर पटकती उत्कंठा!

...उसे फिर से अपनी खोखली हालत का एहसास हुआ और वहुत ही संपूर्ण तेज़ी से सोच गया था कि अपनी हालत वदलनी ही होगी। तनाव की तेज़ धार से छीलने वाली इस ज़िंदगी को वदलना ही होगा। लक्ष्य तक पहुंचाने वाली भयंकर वेचैनी की अनुभूति ने उसे भी धर दवोचा था।

अच्छा हुआ धीरज का एक दोस्त आ गया और वह उसके साथ चला गया। अव वह अकेला रह और भी स्पष्टता से उन वातों के वारे में सोच सकता है जिनको उसने सुरेश भाई के सामने दोहराना ही था।

काफी देर वाद सुरेश भाई मिले। उसने यहां से वात शुरू की थी, "सी० के० जी दो हफ्ते में ही दूसरी फिल्म शुरू करेंगे क्या?"

"हां...सारा यूनिट वही है। खाली म्यूज़िक डायरेक्टर चेंज किया है।"

क्या खूव आत्मविश्वास था सुरेश भाई का भी। यहीं गड़वड़ करने के वावजूद यहीं नौकरी कायम रहने की निश्चितता! विना ग्लानि के सिर उठाये चलने की कला इनसे सीखनी ही चाहिए। और वह सीखी ही जायेगी लेकिन पहले इनके गुट में शामिल तो हो ले।

उसने सिगरेट का कश लगाते हुए धुआं मुंह में घुलाते और दिमाग में खौलते शुरुआत के कितने ही ढंग सोचे पर सिरा नहीं मिलता था।

धत्...सुरेश भाई वहां से उठकर चले भी गये और वह वैठा सोचता ही रह गया...प्रिंट देने की वात नहीं ही कह सका न? —पर फिर अचानक वह एक छुटकारा भी महसूस कर गया। ठीक ही हुआ जो नहीं कह सका।

—और सिगरेट पीयेगा। पर डिबिया खाली थी। बाहर ही से लेगा।

सड़क पर आया। हवा बड़ी ठंडक-भरी थी। पानी नहीं बरस रहा, बादलों वाला मौसम। और बड़ी अजीब-सी खुशी की राहत... इतना जर्जर है पर फिर भी खुद को बचा ले जाने की ताकत है उसमें। वरना अभी पल-भर में सब बिखर ही तो चला था।

अपने प्रति एक अजब-सी तसल्ली की अलमस्ती सवार हो गयी थी उस पर और पता नहीं क्यों मन चाहा था कि अपनी यह खुशनुमा हालत किसी के साथ शेयर करे। और तब वही याद आयी थी, अनिता ही। आज इतने दिनों बाद वह बिना किसी उलझन के स्वयं के मस्तिष्क को काफी साफ-सा पा रहा था और इसीलिए अनिता से मिलने में भी किसी उलझनपूर्ण मनःस्थिति की कोई रुकावट नहीं थी।

पर ऊपर उसके आफिस में पहुंचने पर निराशा ही मिली थी। पता चला कि कुछ दिनों से वह लीव पर है, बहुत बीमार है।—और तब अनिता का वह मुरझाया चेहरा याद आ गया था। जिसे काफी दिन पहले देखा था। तो क्या आशंका सही थी। वह सचमुच बीमार ही होगी तब भी।—वह जरूर कल जाकर पता करेगा।—और अनिता से न मिल पाने की हल्की उदासी में घिरता फिर अपनी परेशानियों के घेरे में बंध आया था।

यहीं बिल्डिंग में उस एडवरटाइजिंग फर्म का आफिस है जहां उसका दोस्त काम करता है। पता करना चाहिए, शायद 'एड-फिलम' का ही कोई काम मिल जाये। पर वहां काम का तो कोई सिलसिला जमता दिखाई दिया नहीं था।

किस्मत से कुछ रुपये उधार मिल गये थे और लौटते हुए सोच रहा था कि कहीं अच्छा काम बनते ही दोस्त से लिये रुपये लौटा देगा।

•
•

रात दस बजे काम खत्म हुआ। नीचे वाली लैब से बाहर आया—फिल्मों को सिमेटे, बंद काले-मटियाले ट्रंकों के बीच जमे, अंधियारे

रास्ते में वाहर से टपक रही हल्की रोशनी के वीच राजनंद का सपाट चेहरा दिख आया था—

"सुनो गुप्ता, सी० के० जी ने वुलाया है।"

"क्यों ?···इस वक्त !"

"तुमने पेमेंट के लिए कहा था न उनसे।"

"हां तो, पर···"

"उन्हें पता चला है, तुम्हें मिले नहीं रुपये। वह खुद दे देंगे।"

"पर कहां···!"

"वाहर ही हैं, चले जाओ।"

गेट पर ही गाड़ी रुकी थी। ड्राइवर ने दरवाज़ा खोल दिया—वैठने का संकेत करते हुए। वह अभी तक भी अपने आश्चर्य से मुक्त नहीं हुआ था। कार में एकाएक वैठा भी नहीं गया।

तभी सी० के० जी के आदेशात्मक स्वर सुनायी दिये, "आओ, वैठ जाओ।"

और तव वह आगे की सीट पर वैठ गया था। गाड़ी पेडर रोड की तरफ चली थी। सी० के० जी चुप थे। वह भी क्या वोले। रुपयों के वारे में सीधा ही कैसे पूछे। सोच-सोचकर यही पूछा, "मुझे···मुझे आपके साथ ही चलना है ?"

"हां भाई, अभी वात करेंगे। ज़रा अपना एक काम निवटा लें।"

ड्राइवर कैंप्स-कॉर्नर पर उतरा, दिन-रात खुली कैमिस्ट-शॉप के भीतर चला गया।

सी० के० जी ने उसे टॉनिक्स और कास्मेटिक्स की एक लंवी लिस्ट थमायी थी, "ये सव खरीद टैक्सी लेकर घर पहुंच जाना जल्दी। मेम साहव इंतजार कर रही होंगी। हम जाते हैं। उनसे कहना, कहीं ज़रूरी पहुंचना था।"

सी० के० जी ने उसके पास वैठ अव ड्राइवर वाली सीट संभाल ली थी और गाड़ी फिर फर्राटे से दौड़ने लगी।—"मैंने सोचा, यह ठीक नहीं। वहुत मेहनत कर रहे हो। पैसे तुम्हें वक्त पर मिलने ही चाहिए।"

"जी ऽ···" वह अकवका गया अपनी मेहनत के बारे में सुनकर, वलिक झिझक-सा ही गया। "सुरेश से आज पूछा था मैंने। तुम्हारी पेमेंट नहीं की, इस पर उसे वड़ा डांटा मैंने। तमीज़ होनी चाहिए कि रुपया कहां पहले लगना है और कहां वाद में।"

तेज़ स्पीड से दौड़ती इंपोर्टेड कार वड़ा सुखद समां वांध रही थी और फिर सी० के० जी की हमदर्दी···सारी थकान, टूटन इन दौड़ती, टकराती हवाओं में विलीन-सी हो गयी।

"थैंक यू, सर! वहुत मेहरवानी।"

मोड़ लेती कार चौपाटी की ओर जाते रास्ते पर वढ़ आयी।··· कारें फर्र-फर्र दौड़ रही थीं सड़कों पर, याद दिलाती हुई कि रात वाली रंगीन दुनिया शुरू हो रही है।

ख्याल आया कि सी० के० जी की मेहरवानी पर उसे कुछ ज्यादा झुकना चाहिए। पर यह समझते हुए भी झुकने की अभिव्यक्ति का कोई ढंग ढूंढ़ नहीं पाया।···उंगलियां चटखाता रह गया।

कार चौपाटी की तरफ नहीं मुड़ी थी। सीधी ऊपर मलावार-हिल पर चढ़ते रास्ते की ओर वढ़ी थी।—ये क्या अपने घर जा रहे हैं। तो उसे यहीं उतरना चाहिए। वस मिलनी आसान है यहां से। पर वह चुप हैं। रुपये भी नहीं दिये अभी तो। यहां उतरने की बात कहने का वुरा मना गये तो?

सी० के० जी की चौड़ी हथेली स्टीयरिंग पर दृढ़ता से जमी थी—कनखियों से उधर देखा, चेहरे पर कोई हलचल नहीं। पर फिर भी लगता है कि कुछ कहना चाहते हैं उससे। क्या?—यह वह नहीं समझ पाया।

"शरद, कितने प्रिंट हुए हैं अव तक?"

वह उनकी अचानक प्रकटी वाणी से चौंका, "अं···तीस-पैंतीस तो हो ही गये हैं।"

"वड़ा स्लो काम है। सुरेश से कहना होगा तीन-चार प्रिंट होने चाहिए एक दिन में। तुम्हारी होशियारी पर मुझे कोई शक नहीं। यह तो सुरेश वगैरा को चाहिए न कि हर वक्त लैव वालों के सिर पर

सवार हो प्रिंट निकलवाते रहें।"

अपरिमित संतोष की लहर मन में आ समायी। आखिर सी० के० जी ने तो उसके काम की कद्र की ही है। कितने स्नेह से साथ बैठाये अपनेपन से बातें कर रहे हैं!

सी० के० जी के साथ हवाखोरी करते हुए अपनी सारी दिक्कतें भी पता नहीं क्यों बड़ी मामूली हो उठी थीं। जिनको झेला जा सकता है। ऐसी भी क्या बात है—यह बुरा वक्त जल्दी खत्म हो ही जायेगा, आत्मविश्वास के झोंके मन में भर आये थे।

अब वे हैंगिंग-गार्डन वाले रास्ते पर थे। इधर-उधर पार्क की हुई कारें। जिनमें कइयों में कुछ ऐसे जोड़े जिन्हें और कोई जगह नहीं मिली तो सुनसान अंधेरे में कारों में हर तरह का एकांत पा लेने की फिराक।

फिर अप्रत्याशित तौर से सी० के० जी ने एक झटकेदार 'यू' टर्न लिया और समुद्र-तल की गहराइयों वाली तरफ की ऊंचाई के समीप कार रोक ली।

"शरद, एक बिज़नेस डील भी करनी थी तुमसे। तुम मेरे साथ एक डील करोगे?"

"जी!" मन उछल पड़ा कि आज कौन-सा शुभ दिन आया है। लेकिन फिर यकायक ही संजय की चेतावनी भी दिमाग में कौंधी थी··· 'सी० के० जी भी कुछ कम नहीं। खुद ही अपनी फिल्म के प्रिंट गायब करवा सकते हैं, करवाते हैं'···तो क्या वैसी ही डील की बात करेंगे। एक दहशत चारों ओर फैले अंधेरे में सनसनाती दिल पर सवार हो गयी।

"बस तुम्हें प्रिंट्स में थोड़ी अदला-बदली करनी है। जो प्रिंट रिकॉर्ड में न हों वह हमारे पास पहुंच जायें।"

माथे का झटका समूचे शरीर को हिलाने वाला था···क्या कमतर थी बात समझने में। दिल पर ठक्-ठक् कुछ चलने लगा।

स्टीयरिंग पर बजती उनकी उंगलियां प्रतीक्षारत होने की खलबली में थी। एकदम कोई उत्तर मांगा जा रहा था उससे।

"मैं···कर सकूंगा ऐसा ?"

"ऑफ कोर्स, क्यों नहीं। चार-पांच दिन का ही तो खेल है। वैसे सारी डिलिवरी लेने के बाद मैं ऐसा आसानी से कर सकता हूं। पर अभी यहीं से प्रिंट ले लेने में रिस्क कम हो जाता है और तुम्हें भी हज़ारों का फायदा रहेगा।"

कई सौ फुट नीचे मेरीन-ड्राइव की ओर दूर-दूर तक की बिजलियां धब्बे-धब्बे-सी दिमाग में जम रही थीं।···वहां नीचे फैला समुद्र सिर्फ एक काली ज़मीन-सा था। जिसमें आंखें गड़ाते हुए वह कालिख ही कालिख पा रहा था, और कुछ नहीं।

"बोलो ?"

"······"

वह अपमान खाये रूखेपन से बोले थे, "टैक्सी-स्टैंड तक छोड़ देता हूं। डील पसंद हो तो कल शाम को घर आकर बता जाना।

फिर वही तेज़ हवाएं थीं। पर कार के साथ दौड़ती ये हवाएं अब दिमाग के पोर-पोर को दुखा रही थीं। कुछ तो कहना चाहिए इनसे··· लेकिन इन अंधेरों के बीच यह एक बात दंश का छटपटाता ज़हर दे रही थी कि वह तो इस घोर बेईमानी के ख्याल से कांपता रहा और ये अपने ही काम से इतने रोब के साथ बेईमानी कर रहे हैं···कुछ कहने के लिए सारे शब्द दिमाग से चुक गये थे।

टैक्सी-स्टैंड के पास कार रोक इतना ही बोले थे, "कल तक बता देना वरना राजनंद के एक दोस्त को इस काम पर एपॉइंट कर रहा हूं।"

"जी," वह बेहोशी-सी में ही था।

"सुनो, कई दिनों से रात का काम कर रहे हो। लो यह कुछ कन्वेंस एलाउंस रख लो।"

कुछ नोट उन्होंने तेज़ी से उसकी तरफ फेंके और कार स्टार्ट की थी। खड़ा-खड़ा नोटों को भांप गया। पचास रुपये तो हैं। लेकिन दूसरे ही क्षण बेहोशी दूर-सी हो गयी। भीतर से किसी ने चेतवानी दी थी—फेंक दो इन नोटों को इस खरीदार के मुंह पर···पर वह जड़-विमोहित सोचता रह गया और कार आगे बढ़ गयी थी।

उसने घर जाने के लिए टैक्सी ही ली। और सीट पर ढह-सा गया था ! सारे रास्ते तेज़ी से गुजर रही इमारतें और उनकी खिड़की, दरवाज़ों पर बैठी रोशनियां आंखों में चुभती रहीं और कई दिमागी बवंडर दिल को चीरते रहे···तो सुरेश भाई वगैरा की सारी चालें पलाप। हज़ारों के रुपये लेते वे लोग वैसे ही घिसटते रहेंगे।

और वे सब तो गुट बनाना चाह रहे थे—और यहां इनके हाथों में बिक जाना है ! इनके खेल का एक मोहरा बनना है। लेकिन बस, इनके यहां गार्डियन की देखरेख में होने वाली निश्चितता ज़रूर है।··· और वह तो उन लोगों को कमीना कहता था, नमकहराम समझता था। पर किससे नमकहरामी !

सब निष्ठाएं इसी तरह बिना अस्तित्व के मुर्दा-सी झूलने लगती हैं। ···घर की ढहती हालत बचा लेने की प्रेरणा भी वैसा काम नहीं करा सकी। पर सब ही चोर हो जायें तो चोरी किसकी !—और पहले वाली बात होती तो सी० के० जी जैसे लोगों को ही खून चूसने वाला मानता, ख़ूंखार हो उठता ऐसे लोगों को उखाड़ फेंकने के लिए ! पर वे लोग ! जो उसके साथ के हैं उन्होंने भी क्या किया ? कितनी धमकियां चलायी हैं उस पर, कितने घेराव किये हैं !···कुछ फर्क नहीं। बस, ऐसे सब लोगों का जहां जितना बस चलता है दूसरे को दबोच लेते हैं।

डगमगाता हुआ घर की सीढ़ियां चढ़ रहा था। घुप्प अंधेरा—और भी कई लाख अंधेरे, मन की तहों से लिपटते हुए। सचमुच इन अंधेरों में किस क्षण कौन-सी चूहेदानी में फंस जायेगा यह पता भी नहीं चलेगा···ओह, राजनंद ने ठीक ही कहा था।

अंदर आकर पलंग पर गिरा तो टांगें नीचे लटकी थीं···जूते तक नहीं खोल पा रहा था।

मंजु की घनी सांसें करीब थीं। अच्छा है सो रही है वरना प्रश्न के ढंग वाली बातें इस वक्त बहुत भारी पड़ जातीं।

सोने लगा तो कमरे के अंधेरे में आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था ···क्या करे ! क्या करे ! फिर मन हुआ मंजु के सीने में मुंह छिपाकर रो दे। मद्धम चांदनी की यहां तक फैली हल्की लकीरों में मंजु का

चेहरा नाजुक-सा—डरे हुए बच्चे की तरह सोयी हुई। ओह, वह इसके सीने में मुंह छिपा क्या रोयेगा—मंजु को ही उसके सीने से लिपट रोना है। निचोड़ देने वाली कोई यातना लिये बाल्कनी में आया था। और आधी रात सिगरेट फूंकते और आधी रात वहीं आराम-कुर्सी पर लेटे अधजागी हालत में बिता दी थी।

•
•

"चलो, नाश्ता कर लो।" मंजु ने रसोई में से आवाज दी थी। सुबह के नौ बज चुके थे।

"नहीं, अभी मन नहीं।" यह कह वह दीवार की ओर मुंह करके लेट गया।

सचमुच आंखें बंद भी हुई जा रही थीं पर वह सो भी नहीं सकता—और सुबह तक जागने की थकावट जिस्म पर ऐसी हावी है कि उठ भी नहीं सकता।

—खाने के वक्त मंजु ने फिर पुकारा था, "अब खाना तो खा लो,—फिर सो जाना।"

"नहीं ऽ ऽ ऽ" उसने इतने चिढ़-भरे गुस्से में कहा था कि वह करीब आकर बिलकुल सहमे शब्दों में बोली थी, "क्यों, तबीयत तो ठीक है न ?"

वह चुप पड़ा रहा। मंजु कुछ देर इंतजार करती फिर वहीं पलंग के किनारे बैठ गयी। और तब उसे महसूस हुआ था कि वह मंजु के प्रति अन्याय कर रहा है। उसे परेशान करने में क्या तुक है। इससे क्या कुछ हल निकल सकता है!

उसने मंजु की तरफ देखा। ऐसा रुनक्का चेहरा था कि एक और 'ना' सुनते ही रो दे। फिर सामने फर्श पर बैठी, पुराने अखबार के कागज को फाड़-फाड़कर उससे खेलती-हंसती रिंकी भी धाड़-धाड़ रोने लगेगी मां को रोते हुए देखकर।—बड़ी सतर्कता से खुद पर काबू पाते हुए वह उठा और बाद में खाने का एक-एक कौर बड़ी मुश्किल से गले में उतारा था।

बाद में न चाहते हुए भी वह पलंग पर आ पड़ा। मंजु ने फिर

यही समझा कि वह सो रहा है। पर बंद आंखें और थके दिमाग के सामने था क्या—कल की रात, सिर्फ वही। सी० के० जी शाम तक उसकी प्रतीक्षा करेंगे। ज्यादा समय उनके पास नहीं।—और बस, फिर वह एकदम बेकार हो जायेगा। मतलब यह कि पहले वह कोई प्रणाली चुन सकता था पर अब चुनना भी मुश्किल। प्रिंट गायब न करे तो काम बिलकुल ही हाथ से गया।—ओफ, शाम हो आयेगी जल्दी ही और निर्णय लेना तलवार की तरह सिर पर लटका है।...दिमाग इस तरह गर्म-सा हो गया, यूं तपने लगा कि उस तरह निष्क्रिय पड़े रहना बर्दाश्त से परे हो गया था। वह उठा और तैयार होकर चल दिया।

मंजु ने पूछा, "कहां जा रहे हो ?"

"लैब ही तो।"

पर वह वहां नहीं जा सका था। इधर-उधर घूमता रहा। चर्चगेट स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर बैठा बेमतलब से अंदाज़ में लोगों के चेहरे पढ़ता रहा। आने-जाने वाली ट्रेनों की गिनती करता रहा और फिर वही—घूमना, भीड़ में बैठना, यह सब भी बर्दाश्त से परे हो गया था। उसे कहीं जाना है, उसे कहीं पहुंचना है—मानो यह स्वर कानों में पीटता कहीं धकेले दे रहा हो।

स्टाल से एक ठंडा ऑरेंज लेकर पीते हुए वह मुस्कराना चाह रहा था—न, वह बिक नहीं रहा तो घबराये क्यों ! यह तो जीत है। दीनू को मात दे देगा वह। अन्याय को हरा देगा। सी० के० से उनकी अगली पिक्चर का कांट्रैक्ट पा लेगा। उसका एडीटर वह होगा, दीनू नहीं। पूरा प्रिंट तैयार करने की वसूली में यही शर्त रखेगा। एक बार ही तो यह सब करना है।

...और यही एक मौका है। पा लेना है एडीटर बनने का कांट्रैक्ट। न...बिकने का कोई सवाल नहीं—रुपये नहीं लेगा वह...यह तो एक तरीका है हारने से बचने का। इसके सिवा कुछ सोच नहीं पा रहा—कुछ भी नहीं।

नहीं, धैर्य बचा नहीं, शाम ढलने तक का इंतजार कैसे हो—बस, एक छलांग और सारी दुविधाएं खत्म !

उसने ये सारे दिन कैसे व्यतीत किये उसे कुछ होश नहीं। जैसे प्रिंट होती रीलों के साथ ही वह भी रोलर पर जा बैठा हो—और बस अपने हाथ में लिये काम को पूरा करने के लिए घूमता ही जा रहा हो, घूमता ही जा रहा हो।···और फिर एक दिन खटाक से मशीन रुक गयी हो।

और वह उस दोपहर धूप भीगी, गीली समुद्री हवाओं का सकून पाने ही माहीम-बीच पर जा पहुंचा था। परेशानियां खत्म···अब कोई तनाव नहीं। बहुत दिनों बाद ऐकांतिक शांति का आस्वादन चखेगा।

मंजु सुबह ही पापा के यहां चली गयी थी। अपने घरवालों को खुशखबरी देने में इतनी मग्न थी कि कह रही थी, 'दो दिन से पहले नहीं लौटूंगी। तुम भी शाम को वहीं आ जाना। वहीं रहेंगे हम दो दिन।'

और अब वह शांत-तट की मनोरम उजलाहट का सुख पाने ही यहां आ पहुंचा था।

पर थोड़ी देर बाद ही वह अनंत जलराशि जैसे अपने ऊपर से बहती महसूस होने लगी।—तट की लहरें और दूर का क्षितिज धीरे-धीरे शांत तहें मन में जमा देंगे। उसने यह सोचा था। पर जितने पल बीतते गये सब कुछ हाथ से छूटता गया—लहरों में उथल-पुथल देख रहा है और अनजाना क्षितिज कई-कई दिग्भ्रम देने लगा है।

भयंकर आत्मालोचन चल रहा है—सब कुछ बिखरा-बिखरा अशांत हो गया है। क्यों नहीं संभल पा रहा। उसे कहीं दूसरी जगह

चले जाना चाहिए। पर कहां!—कहीं भी! उसे कह देना है। सब कुछ किसी से कहना है। नहीं तो मानो उसकी मुक्ति नहीं।

और जैसे इतने दिनों बाद कोई बात याद आयी हो। ओफ्फ! अपने चक्कर में वह इतनी बड़ी बात भूल गया—क्या सोचेगी वह!

•
•

उसके घर जाते हुए जो फूलों की दुकान आती थी, उस पर कदम खुद ही ठिठक गये। गुंथी हुई सघन मालाएं—घूरता-सा रहा। फिर देखे रंग-बिरंगे फूल—एस्टर्ज़। उन्हें ही खरीद लिया।

मकान की सीढ़ियां चढ़ते हुए हाथों में संजोये ये फूल भी कांप गये हों···'क्या पता झटक देगी, नाराज होगी या कहेगी अब मेरा तुमसे क्या वास्ता···'

पर वह दरवाजा बंद था। क्या पता सोयी हो। बहुत ज्यादा बीमार हो। उसे जगाना ठीक नहीं। साथ वाले दरवाज़े की घंटी बजा वह लैंड-लेडी के यहां पहुंचा।

"हां, अनिता तो बीमार थी। अब ठीक है।" उस महिला ने गंभीर आवाज़ में बताया था।

और उसने इसी पल सब जान लेने की ज़रूरत महसूस की थी—

"कैसे हुआ क्या था?"

"ठीक-ठीक तो डाक्टर ने भी नहीं बताया। बस, यही ब्रेक-डाउन-सा···पर यह लड़की है बात पर बड़ी अड़ी रहने वाली। अपने चाचा-चाची को हमें नहीं बुलाने दिया। इसकी रूम-मेट भी कितना बोली। पर यह यही कहती रही—'नहीं, अभी मेरी हालत हस्पताल में जाने वाली नहीं हुई। जब जाऊंगी तभी खबर देना। उससे पहले नहीं—बिलकुल नहीं।'—ओह, माइ गॉड।"

मकान मालकिन ने बेहद चिंतित मुद्रा में सिर हिलाया था, "ये दो दिन तो उस बेचारी लड़की ने कितने बुरे काटे—मैं बोल नहीं सकती। बस, तीसरे दिन भी अगर इसका टेम्परेचर इतना ऊंचा रहता तो बस···ओह-ओ, क्या बताऊं। एक लफ्ज़ भी नहीं बोलती

उसने ये सारे दिन कैसे व्यतीत किये उसे कुछ होश नहीं। जैसे प्रिंट होती रीलों के साथ ही वह भी रोलर पर जा बैठा हो—और बस अपने हाथ में लिये काम को पूरा करने के लिए घूमता ही जा रहा हो, घूमता ही जा रहा हो।...और फिर एक दिन खटाक से मशीन रुक गयी हो।

और वह उस दोपहर धूप भीगी, गीली समुद्री हवाओं का सकून पाने ही माहीम-बीच पर जा पहुंचा था। परेशानियां खत्म...अब कोई तनाव नहीं। बहुत दिनों बाद ऐकांतिक शांति का आस्वादन चखेगा।

मंजु सुबह ही पापा के यहां चली गयी थी। अपने घरवालों को खुशखबरी देने में इतनी मग्न थी कि कह रही थी, 'दो दिन से पहले नहीं लौटूंगी। तुम भी शाम को वहीं आ जाना। वहीं रहेंगे हम दो दिन।'

और अब वह शांत-तट की मनोरम उजलाहट का सुख पाने ही यहां आ पहुंचा था।

पर थोड़ी देर बाद ही वह अनंत जलराशि जैसे अपने ऊपर से बहती महसूस होने लगी।—तट की लहरें और दूर का क्षितिज धीरे-धीरे शांत तहें मन में जमा देंगे। उसने यह सोचा था। पर जितने पल बीतते गये सब कुछ हाथ से छूटता गया—लहरों में उथल-पुथल देख रहा है और अनजाना क्षितिज कई-कई दिग्भ्रम देने लगा है।

भयंकर आत्मालोचन चल रहा है—सब कुछ बिखरा-बिखरा अशांत हो गया है। क्यों नहीं संभल पा रहा। उसे कहीं दूसरी जगह

चले जाना चाहिए। पर कहां!—कहीं भी! उसे कह देना है। सब कुछ किसी से कहना है। नहीं तो मानो उसकी मुक्ति नहीं।

और जैसे इतने दिनों बाद कोई बात याद आयी हो। ओफ्फ! अपने चक्कर में वह इतनी बड़ी बात भूल गया—क्या सोचेगी वह!

•

उसके घर जाते हुए जो फूलों की दुकान आती थी, उस पर कदम खुद ही ठिठक गये। गुंथी हुई सघन मालाएं—घूरता-सा रहा। फिर देखे रंग-बिरंगे फूल—एस्टर्ज़। उन्हें ही खरीद लिया।

मकान की सीढ़ियां चढ़ते हुए हाथों में संजोये ये फूल भी कांप गये हों···'क्या पता झटक देगी, नाराज़ होगी या कहेगी अब मेरा तुमसे क्या वास्ता···'

पर वह दरवाज़ा बंद था। क्या पता सोयी हो। बहुत ज्यादा बीमार हो। उसे जगाना ठीक नहीं। साथ वाले दरवाज़े की घंटी बजा वह लैंड-लेडी के यहां पहुंचा।

"हां, अनिता तो बीमार थी। अब ठीक है।" उस महिला ने गंभीर आवाज़ में बताया था।

और उसने इसी पल सब जान लेने की ज़रूरत महसूस की थी—

"वैसे हुआ क्या था?"

"ठीक-ठीक तो डाक्टर ने भी नहीं बताया। बस, यही ब्रेक-डाउन-सा···पर यह लड़की है बात पर बड़ी अड़ी रहने वाली। अपने चाचा-चाची को हमें नहीं बुलाने दिया। इसकी रूम-मेट भी कितना बोली। पर यह यही कहती रही—'नहीं, अभी मेरी हालत हस्पताल में जाने वाली नहीं हुई। जब जाऊंगी तभी खबर देना। उससे पहले नहीं—बिलकुल नहीं।'—ओह, माइ गॉड।"

मकान मालकिन ने बेहद चिंतित मुद्रा में सिर हिलाया था, "वे दो दिन तो इस बेचारी लड़की ने कितने बुरे काटे—मैं बोल नहीं सकती। बस, तीसरे दिन भी अगर इसका टेंपरेचर इतना डाउन रहता तो बस···ओह-ओ, क्या बताऊं। एक लफ्ज़ भी नहीं बोलती

थी यह। डाक्टर भी बहुत घबरा गया था।

"मुझे तो पता ही नहीं चला इतना ज्यादा..."

"अच्छा, आपने फोन भी नहीं किया ?"

"आफिस में तो किया था। पर यहां...आपके यहां नहीं कर सका। दरअसल..."

"अच्छा, देखूं शायद जाग ही रही हों। वैसे अब तो पहले से काफी अच्छी ही हैं।" इतना कह लैंड-लेडी उस दरवाज़े तक चली भी गयी जो पेइंग-गेस्ट्स को दिये रूम-किचन वाले कॉरीडोर में खुलता था।

और वह इन प्रतीक्षा वाली घड़ियों में बैठा नहीं रह सकता था। उठकर वहीं कमरे की खिड़की के पास आ गया और अचानक दृष्टि हाथों के फूलों पर गयी थी। जो सफेद गुलाबी चेहरे उठाये सीधे उसे ही ताक रहे हों—और वह, जैसे कोई बेवकूफ-सा उन्हें थामे खड़ा है।

—पर यूं यह कोई अनोखी बात नहीं। किसी के मन में प्रसन्नता भरने के लिए फूल लाये ही जाते हैं।

वह ही क्यों अतिरिक्त चौकन्ना हो रहा है—ये सारी बातें असहनीय ढंग से घोर भावुक समझी जाती हैं। क्या इसीलिए !

"आप बेशक चले जाइए..." मकान मालकिन की आवाज़ सुनायी दी थी।

"अच्छा !..."

"हां, मैं देख आयी हूं। सोयी नहीं हुई वह।"

"आपने मेरे बारे में बताया ?"

"हां, बता भी दिया है।" मकान मालकिन फिर अपने छोड़े हुए सिलाई के काम में जुट गयी थी।

वह कमरे के दरवाज़े के पास थोड़ा-सा रुका और फिर एक स्थिर मुस्कराहट अपनाये तेज़ी से कमरे में दाखिल हो गया था।

अनिता साड़ी का पल्ला ठीक करती, बिखरे बालों को हाथों से थोड़ा सहेजती कुर्सी पर बैठ ही रही थी। बोली—"बैठिए।"

वह अनिता के सामने वाली आर्म-चेअर पर बैठ गया। देखा—तीन दीवारों के साथ सटे तीन छोटे पलंग हैं। उसकी एक रूम-मेट इस

वक्त अपने आफिस में होगी। और दूसरी जो एअर-होस्टेस है, वह शायद फ्लाइट पर गयी हुई होगी। जाने क्यों, वह इस कमरे की हर चीज पर सोच—खुद को थोड़ा सहज बना लेना चाहता था।

अनिता ने ही बात शुरू की, "कहो, अच्छे हो!"

"यह तो मुझे तुमसे पूछना था।"

"तो बड़ी जल्दी पूछने का ख़याल आया।"

"यह बात नहीं···तुम जानती तो हो कई दिन पहले की उस मुलाकात के बाद फिर हम मिले ही नहीं। तो एक झिझक-सी थी कि तुम्हें शायद अच्छा न भी लगे मेरा आना!···"

"तो अब क्यों आये?"

"क्या करूं, रुक भी नहीं पाया···अब बताओ न कैसी हो?"

"जब ठीक होना ही था तो बीच में चली आयी बीमारी का भी क्या महत्त्व है?"

उसने चौंककर अनिता की तरफ देखा लेकिन चेहरे पर दर्द की कोई लकीर नहीं जबकि स्वर ऐसे थे कि अपनी तकलीफ पर भी एक दर्दीला व्यंग्य कस रही हो।

"मुझे तो बस तुम्हें देखना था। अब तसल्ली हो गयी। अभी चला जाऊंगा।" उसकी आवाज़ में एक रुखाई आ गयी थी। जिसे शायद अनिता बड़ी आसानी से भांप गयी।

तभी झट से बोली थी, "इतनी जल्दी? तुमने क्या सचमुच ही समझ लिया है कि मुझे किसी की ज़रूरत नहीं रही। मैं क्या नहीं तरस सकती किसी अपने से बात करने को···!"

'बातें!—हां बातें तो बहुत-सी होती हैं। जो परतों की तरह मन पर जमकर इतनी कड़ी हो जाती हैं कि इंसान उनका बोझा न उठा सके।' उसके भीतर भी वाक्य सुलगे थे लेकिन वह खामोश रहा।

और अनिता के फीके-से चेहरे पर थीं—एक अजब लौ से चमकती वे आंखें, जो अब उसके चेहरे पर टिक गयी थीं।

बिना कुछ कहे अभी तक अपनी गोद में रखे उन फूलों के गुच्छे को

देखने लगा और फिर उन्हें उपेक्षा से तिपाई पर रख दिया था—और यह लंबी चुप्पी तीव्र शून्यता से भरी थी। और अब वह जिसे नहीं सह सकता था।

सीधे अनिता की तरफ देखते हुए कहा था, "पर तुम्हारा तो यही कहना था न कि हमें एकदम अलग-थलग रहना चाहिए।"

"अब उस बात के क्या मायने, जब हम फैसला ले ही चुके।"

"नहीं, उसी बात का महत्त्व है अनिता, सिर्फ उसी बात का। बाकी और क्या है कुछ नहीं।" लेकिन यह कहते-कहते उसे अपने ही शब्दों पर से भरोसा जाता रहा। वह फिर इस प्रसंग से क्यों चिपके जा रहा है!...

एक बार अनिता ने कहा था, 'किसी से पूरी तरह कटे बिना तुम दूसरे से नहीं जुड़ सकते!'—हां, जब वह नहीं कट सकता तो ये सारी बातें क्यों!...और अनिता ने अब भी वही कुछ कह दिया था—

"वह तो है पर...तुम खुद ही सोचो जब तुम अपने जीवन के नमूने से इस कदर चिपके हुए हो तो क्या उसके बिना तुम खुद भी बौखला नहीं जाओगे ?"

"बस, रहने दो अनिता प्लीज़..."

अनिता ने उसके मन की तहों में छिपी वह बात कह दी। जिसे साफ़-साफ़ सुनना बहुत भारी था जैसे खुद अपने अवचेतन को सम्मुख खड़ा कर दिया गया हो जो तड़ातड़ व्यंग्य शूलों से बेंध रहा हो...'हां, हां सुविधाओं पर लोटने वाले हो तुम। चाहते हो दो सुविधाएं एक-साथ जीवन में समायी रहें—भले ही वे एकदम विपरीत हों और महाद्वंद्व की तोड़-फोड़ मचाती रहें...?'

वह हांफने-सा लगा जबकि खुद को स्पष्ट करने के लिए कहना कुछ और भी था। हां, सब कुछ कह देगा—"अनिता, मैं ये सब न कहता, कुछ भी न कहता पर इस बीच सब बदल-सा गया है। उन अपनों के लिए सब जुटा देने के बाद मैं जैसे जिम्मेदारी से मुक्त हो गया और मुझे लगा अब सब से कटकर तुम्हें पाने का हक मिल गया...पर अनिता, अभी इस क्षण लगने लगा है कि तुम्हें पाना उतना आसान नहीं। तुम यूंही

होती जाओगी और एक दिन…"

"उसे छोड़ शरद !" अनिता के स्वर उत्तेजना से भरपूर थे, "हुआ क्या है यही बताओ। मैं भी समझ रही हूं कि कहीं कुछ बहुत बदल गया है। बताओ सब कुछ।"

"अनु, मैं ऐसे कुचक्र में फंस गया हूं कि क्या कहूं। जबकि मैंने सोचा था कि एक बार उसमें दाखिल हो भी जाऊं पर जल्दी ही निकल जाऊंगा।…और अब लौट चलने का रास्ता नहीं मिल रहा।"

"क्या मतलब…?"

"वही…प्रिंट गायब करने की बात बतायी थी न, वही कर बैठा हूं।"

"हैं !"

"हां-हां, बिलकुल। देशद्रोह किया है मैंने।" वैसे यह देशद्रोह बहुत अर्थहीन शब्द हो चुका है इसलिए बड़ा दकियानूस भी लग सकता है। पर और इसे कहूं भी क्या, जो आखिर में आत्मद्रोह से ही जुड़ेगा," सारा तनाव शब्दों में बिखर चला था, "…पर यह अकेले का आत्मद्रोह नहीं है। मैंने अकेले ही यह सब नहीं किया है अनिता…"

यह कह जाने के बाद वह इतना थक-सा गया कि हथेलियों पर सिर धर के बैठा रहा।

कुछ क्षणों बाद अनिता ने धीमे से कहा था, "समझ गयी। कुछ लोगों की वही योजना—जिसके बारे में तुमने एक बार बताया भी था।"

और फिर उसने देखा था कि अनिता एकदम छिटक जाने वाले ढंग से मानो कहीं बहुत दूर से उसे पथरायी दृष्टि से देख रही हो।

—एक कंपकंपी-सी छूटने लगी और वह हथेलियां मसलने लगा था—"मैं न करता ऐसा…पर एक बार ही ऐसा हुआ है।"

और जैसे फिर से सारी बातें दिमाग में सर्र से घूम गयी थीं। सारे दबाव, मंजु और घर के इर्द-गिर्द घिरी स्थितियां—फिर सारी विवशताएं तोड़ देने की जलती हुई उत्कंठा से उसका परिचय !…और फिर काम का भी छिन जाना—और फिर कुल मिलाकर खुद को बदलना ! लेकिन सब ठीक-ठाक कर देने के बाद भी बची है व्याकुलता

बेचैनी···बस दोबारा से यही कह पा रहा था, "वह तो हो चुका। आगे से ऐसा कभी नहीं होगा।"

"पर तुमने खुद ही कहा था अभी कि उस कुचक्र से निकलना मुश्किल है।"

हां, किसी भौतिक कुचक्र की बात तो अलग—यह तो किसी आंतरिक भंवर में भी धंसने की बात है जहां से निकल जाने का हर रास्ता टूटा-फूटा मिल रहा है···अपनी बेचैनी से छुटकारा कैसे पाऊं!"

"पा जाओगे, कुछ समय बाद।"

अनिता ने व्यंग्य किया है?—वह एकदम परेशान हो आया। फिर वह जल्दी से पूछ रही थी, "वैसे प्रिंट बाहर भी भेज दिये गये हैं क्या?"

"हां, क्यों? तुम रिपोर्ट करोगी क्या?"

"सबूत तो मिलेगा नहीं और जानते ही हो सबूत का ही तो महत्त्व होता है। किसी सच्ची या झूठी बात का नहीं। वह दे सकती तो जरूर कर देती रिपोर्ट।"

वह एकबारगी ही बुरी तरह चौंक गया था।

पर वह हंस रही थी, "ओह शरद, तुम सचमुच, सीरियस हो गये···मैं तो चाय के लिए उठ रही हूं।"

"तुम···तुम मत उठो, मैं तुम्हें तकलीफ नहीं दूंगा।"

"मैं आंटी से यानी अपनी लैंड-लेडी से कहूंगी। तकलीफ कैसी!"

फिर अनिता चली गयी थी। वह जल्दी नहीं लौटी—तो चाय लेकर ही आयेगी! क्या उसकी बात सुनकर झटका लगा उसे?—और इसीलिए उसके सामने से हटकर इतना समय लेगी उस शॉक से उबरने के लिए।

पर यह भी है कि अनिता उसे समझ लेगी, वह उसे दोष नहीं देगी। इतना यकीन है।··· इतना यकीन है?—और उसे लगा था कि इस छोटे-से कमरे में बैठ यहां व्यतीत हो रहे क्षण बहुत मूल्यवान बन गये हैं।

अनिता चाय की ट्रे लिए ही कमरे में लौटी थी—"सुनो, मंजु

जानती है यह बात !" चाय का प्याला पकड़ाते अनिता ने बुझे स्वरों में पूछा था ।

"नहीं···उसे इतना पता है कि मैं एडीटर बन गया हूं और कंपनी ने मुझे पंद्रह हजार एडवांस दिया है तीस हजार के कांट्रैक्ट के ऊपर। और मंजु अपने पापा से कुछ और रुपया मांग अच्छा-सा एक अपना घर लेने की फिराक में है । आज अपने पापा के यहां गयी है ।"

"पर···वे लोग तो तुम्हारे यूनिट के थे न ।"

"हां, पर अब वे नहीं···" और वह एक ही सांस में सी० के० जी के साथ पक्की हुई बिजनेस-डील के बारे में बता गया था ।

और अनिता जैसे अपने से ही प्रश्न कर रही हो, "अच्छा ! वह खुद ही ?···पर आखिर ये लोग बच कैसे जाते हैं ? कानून से भी डर नहीं लगता ?"

"हद है, क्या बात कर रही हो । 'बांट' के हिस्से फैलाने वालों को क्या डर होता है ! इस बांट में शामिल हुए शक्तिशाली लोग भी अपने ही लोग बन जाते हैं । ··· और यही तो है जो आज 'बांट' लेने वालों में शामिल होते हैं वही 'बांट' देने वाले भी बनते जाते हैं ।"

···हां, इसी तरह तो कोई ओर-छोर न पा कभी खत्म न होने वाले भीषण दायरे बनते हैं—जो हमें घुमा-घुमाकर पीसते जाते हैं ।" अनिता अब भी जैसे स्वयं से ही बात कर रही हो । फिर दो पल की चुप्पी के बाद एक झटके से पूछ रही थी—

"और···शरद, क्या तुम जिंदगी-भर मंजु से, परिवार से और सबसे इस बात को छिपा सकने का बोझ लिये रहोगे ?···और अगर बहुत बाद में तुम्हारे बच्चों को पता चलेगा । तब भी तुम छिपाना ही चाहोगे ।"

"पता नहीं ।"

और फिर एक लंबी खामोशी उनके बीच आ ठहरी थी । सिर्फ बाहर बालकनी पर आ बैठी चिड़ियों का कलरव ही एकमात्र आवाज बच रही थी उनके बीच । क्योंकि वे दोनों ही उसे एक साथ सुन रहे थे ।···और अभी कुछ देर पहले ही तो वह सोच रहा था कि दरअसल

वे मानसिक जुड़ाव के चरम पर हैं।...और अनिता ने यह भी कहा था कि वह तरस रही थी किसी से कुछ कह पाने के लिए।

और अब वे एक-दूसरे तक नहीं पहुंच पा रहे। नहीं, वह ऐसा नहीं होने देगा।

"अनु, यह फूल मैं तुम्हारे लिए लाया था।"

"मेरे लिए ?" वह चौंकी थी। फिर वही हल्का-सा "थैंक यू।" बढ़कर फूल उठाये भी नहीं। उन्हें छुआ भी नहीं। वह इस वीरान-सी घुटन से तंग आकर कह उठा—"अनु, तुम बताओगी नहीं कुछ। तुम बहुत बीमार तो थी ही पर कोई बड़ी उदासी भी रही है। है न ?"

"हां, एक दौर ज़रूर आया न सह पाने का। बताऊं तुम्हें एक खबर—किशोर ने शादी कर ली है, एक अमीर डिवॉर्सी से।"

"ऐसा…?"

फिर वह चुप हो गयी थी पर कुछ बता देने की तैयारी में ही। जबकि उसे ख्याल नहीं था कि वह इतनी जल्दी अपनी बात कह देगी।

"पर अनिता…यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। अब मुक्त होना कहीं आसान हो जायेगा तुम्हारे लिए।"

"वाह, क्या इतनी आसानी से अपने को स्थितियों के अनुरूप ढाला जा सकता है।" अब अनिता के स्वर तीखे हो चले थे, "…जानते हो सब कुछ के बावजूद मुझे प्रतीक्षा थी कि कुछ वक्त गुज़र जाये फिर कोई चमत्कार हो जायेगा। वह एक पछतावे से भरे पुरुष की तरह मेरे पास लौट आयेगा और मैं उसे माफ कर दूंगी। विरुद्ध ज़िंदगी से सब तो लड़ नहीं सकते शरद, कुछ लोग एक ही प्रहार से डगमगा जाते हैं।"

"…पर चमत्कार होने इतने आसान नहीं। उनके बारे में सोचना बड़ा खुशनुमा है…और अपने ही विचार मेरे लिए शर्मनाक हो गये कि क्यों मैं उसे माफ करने को तैयार थी। वह तो…"

अनिता के स्वर टूट से गये थे और उसे लगा था कि आज वह ज़िंदगी में पहली बार अनिता को रोते हुए देखेगा।…पर कई क्षण

बीते कोई आंसू नहीं, कोई सिसकी नहीं। वही मौन घुटन।

फिर अनिता उसे न देख सामने दीवार पर लगी पेंटिंग को देखते-देखते जाने कहां बहुत दूर निकल गयी थी, "तुम्हें याद है मैं जिस दिन तुम्हें 'थ्री कॉयन्स' में मिली थी और तुमसे ज्यादा बात भी नहीं कर सकी, उससे एक दिन पहले ही मुझे यह खबर मिली थी...पर फिर भी मैं आफिस गयी। मैं तुम्हें बता देना चाहती हूं कि मैं कोई आत्मदया से पीड़ित बीमार नहीं हूं...मैंने सारा दिन काम किया। अपनी भावनाओं से लड़ने की कोशिश करती रही। पर वह रात बड़ी भयानक हो गयी थी...मैंने नींद लाने के लिए डबल डोज ली। पर यकीन से बाहर की बात !—मुझे फिर भी नींद नहीं आती थी।

"इससे पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था, कैसी सुनसान रात थी वह—जैसे चेतना खोने और पागल होने के बीच सांसें चल रही हों...जसे अगले पल सब घुल-मिलकर सपाट हो सकता हो.... पर देखो, देख लो, मैं पागल नहीं हुई। यह मन कितना लालची है चेतन अवस्था को पाने के लिए...." अनिता का स्वर रुंध-सा गया था और उसे फिर लगा—पर नहीं, गलत लगा—वह नहीं ही रोयी थी।

वह वहीं पास ही कोने के स्टूल पर रखी शीशियों में से सबसे बड़ी शीशी को छू रही थी, "देखो, यह शीशी है न....मैं इसे कितनी-कितनी देर तक देखती रही हूं।"

वह अपने भीतर किसी एक असमर्थता का जहर-सा फैलता महसूस करने लगा।

"....और पता है पूरा एक हफ्ता बिस्तर पड़े हुए मैंने अकेलेपन का विराटतम स्वरूप पाया था और मैं जैसे सोच ही बैठी थी कि इसे पूरी तरह देखूंगी—एकदम पूरी तरह। देखूंगी अंत क्या होता है? क्या मैं शीशी की सारी गोलियां निगल जाऊंगी?....मैं देखूंगी मृत्यु का आगमन, उसका आलिंगन...पर मैं मरी भी नहीं। जिन्दा हूं तुम्हारे सामने सही-सलामत...यह जिजीविषा कितनी भूखी है शरद....", और वह जैसे जबरदस्ती मुस्करा दी थी।

....कहीं कोई गलीज चीज फैलती मन पर छितराने लगी थी। वह

झटके से उठा था—वह शीशी उठायी और खिड़की से बाहर जोर से पटक दी। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि अनिता देखती ही रह गयी।

फिर वह उठी, खिड़की से झांका—नीचे सीमेंट की पट्टी पर पटकी शीशी के टुकड़े-टुकड़े कांच को देखती रही। वहां छिटकी हुई गोलियां काले-काले धब्बों की तरह आंखों में जम गयी थीं।

—फिर वह मुड़ी थी, उसकी तरफ बेहद लगाव से देखा था और फिर जाने क्या हुआ कि हताश होकर कुर्सी पर गिर-सी गयी—और घुटनों पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो दी थी।

····और तब उसके भीतर हाहाकार-सा मच गया था। आज वह देख रहा था पहली बार वह लाचार-सी बनी गहरी सिसकियां भर रही थी।

पहले वह सोचता था कि कभी वह ज़रा-सी कमज़ोर दिखे, सहारे के लिए बिलखती-सी लगे तो वह उसके सम्मुख कहीं ऊंचा उठ सकेगा। पर आज उसकी रुलाई में तो वह अपनी ही किसी हार के रुंधते स्वर सुन रहा था।

उसके समीप पहुंच उसे चुप कराने का हर प्रयत्न करने लगा—"अनु, प्लीज़ ऐसे मत रोओ।"

फिर सारी सांत्वना देने के लिए वह उसके चेहरे को अपनी हथेलियों में भर टटोलने-सा लगा।

"ओह, शरद····," वह हिचकियों के बीच टूटते हुए ढंग से कह उठी थी, "मैं लाख सिर पटक लूं पर मैं पूरी तरह कभी निराश भी नहीं हो सकती।"

"तो—तो ठीक है न। इससे अच्छी और क्या बात होगी।"

"अच्छी?—हां अच्छी ही तो पर कितनी मुश्किल!"—और फिर वह दोबारा से एक आवेग लिये रोने लगी थी।

और वह एकदम भयभीत-सा हो आया। वह यहां आ पहुंचा था तो किसी अपनी पीड़ा में भुनता हुआ और इस क्षण भी वह उसके कंधे से लग कह देना चाहता था, "मैं हार चुका हूं अनु, मैं मानता हूं अपनी हार।"—और अब वह हताश हो गया था—बस उसने कोमलतापूर्वक

उसकी बांह पकड़ उसे बिस्तर पर बैठ जाने के लिए कहा था। और पता नहीं वह इतनी जल्दी उसकी बात मान कैसे गयी थी।

वह उसकी सुबकियां दिल पर पत्थर रख काफी देर तक सुनता रहा। क्योंकि उसे लग रहा था कि वह कुछ कहेगा तो यह और भी जोर से रो देगी।

थोड़ी देर बाद कमरा निःशब्द था और अनिता की आंखें मुंदी थीं —थकान की नींद-सी में डूबी हुई। जैसे गीली पलकें अभी भी दोहरा रही हों—'ना मैं सिर्फ किसी ऊपरी हार की वजह से अपने निज को नहीं बदल सकती।' पर वह खुद तो थी खामोश।

पांच-दस मिनट ही बीते होंगे, अनिता एकदम से उठ बैठी थी, "क्या बजा होगा ?"

"साढ़े चार।"

"ओह, मुझे पांच बजे तक पहुंचना था अपनी एक सहेली के यहां।" उसके स्वरों में हल्की अस्थिरता-सी शेष थी।

"क्यों ?"

वह बता गयी कि सहेली की बहन एक छोटे शहर में पढ़ाती है। वहां से हॉस्टल में वार्डन कम टाइपिस्ट की पोस्ट खाली है। चाची जी ने भी कहा था, 'वहां चली जाओ। तुम्हें जगह पसंद आये तो नौकरी करना नहीं तो महीने-भर को चेंज ही हो जायेगा।'

"सचमुच मुझे भी शांत-सी जगह की ही तलाश है।"

"तो तुम जाओगी ?"

"शायद—हां।"

"पहले तुमने बताया ही नहीं।"

"प्रसंग ही नहीं उठा," और वह अल्मारी के समीप जा उसे खोल अपने लिए साड़ी तलाशने लगी थी। उसका यह रूखापन एक चोट दे गया। पर वह इस रुखाई के विरुद्ध कुछ कहने की स्थिति में स्वयं को नहीं पा रहा था।

"तुम्हें तैयार होना होगा।—मैं जाऊं ?"

"चले जाने की क्या जरूरत है। मुझे साड़ी बदलनी है। बाल्कनी

में चले जाओ।"

वह सचमुच ही आज्ञाकारी बच्चे की तरह बालकनी में जा खड़ा हुआ था।—धूप अब भी नहीं ढली। सामने नीम के पेड़ की पत्तियां सरसरा रही हैं। दो-तीन घने पेड़ों पर कांव-कांव कौवे डोल रहे थे—वेसोच-भरे ढंग से सब निहारता रहा।

और जब अंदर आया तो अनिता बिलकुल तैयार ही थी। बस, रक से चप्पल निकाल रही थी।

"मैं छोड़ आऊं वहां तक?"

"जल्दी न हो तो छोड़ दो।"

"कोई जल्दी नहीं।"

अनिता आइने के सम्मुख खड़ी हुई···चेहरे को देखती रही। वह आइने में ही उसे देखता रहा। आंखें सूजी हुईं, चेहरा उतरा हुआ और वह मुख पर मुस्कराहट की लकीरें खींचने की कोशिश करती माथे पर छोटी-सी बिंदी लगा रही थी।—उसका यह सारा चुप-व्यवहार असहनीय होता जा रहा था और वह डूबते दिल से पूछ गया था, "लौटकर कब आओगी?"

"क्या पता, कहा तो है वहीं नौकरी मिल रही है···।"

फिर वह ठिठक-सी भी गयी। तिपाई पर पड़े फूलों को उठा लिया।—और फूलों को स्पर्श करते हुए एक चमक की लालिमा उसके चेहरे पर पल-भर को दहकी थी,"इन्हें तो सजा लूं।"

अनिता फ्लावर-पॉट में पानी भर लायी। एक-एक फूल उसमें सजाने लगी—और वह सोचता रहा कि अभी वे टैक्सी पकड़ेंगे···फिर एक जगह अनिता अलग हो जायेगी। फिर वह उससे विपरीत दिशा में चल देगा। घर या मंजु के पापा का घर, दोनों ही दूसरी तरफ हैं

···और वह ज़रूर मुस्कराकर विदा लेगी पर अपनी इन्हीं सूजी, लाल आंखों सहित और फिर जाने कब तक ये आंखें उसका करती रहेंगी।···और जाने वह यहां कब लौटकर आयेगी···फिर मिलेगी या नहीं!···वह सोच-सोचकर सुन्न-सा क्यों होत है। स्थिति को बदल क्यों नहीं पा रहा।

फ्लावर-पॉट को बड़े चाव से अपने बिस्तर के पास की खिड़की में सजा देने के बाद अचानक अनिता ने कहा था, "मैं भी कैसी हूं। अपने में ही उलझ गयी थी। सच, तुमने आज कितनी उदासी-भरी बात बतायी।"

"हां, अनिता, हार तो गया ही हूं फिर तुमसे क्या छिपाना था?"

"पर सुनो, उस सबमें शामिल हो जाने का तुम्हारा वैसा निर्णय क्या बिलकुल अपना था? मेरे ख्याल से नहीं। है न?"

क्षण-भर को अनिता का यह पूछना व्यर्थ लगा। मानो वह जानती सब है। बस, उसके मुंह से कुछ सुन उसके पूर्णतया न हारे होने का आभास पाकर एक तसल्ली चाहती है।

वह उसकी तरफ अनिमिष-दृष्टि टिकाये कुछ पल चुप रहा। फिर दूसरी ओर देखते हुए बोला था, 'शायद तुम ठीक कह रही हो।"

और उसका दिल मानो किसी प्लास में पकड़ उमेठ दिया गया हो····'हां यही फर्क है—मेरा निर्णय मेरा नहीं होता और तुम्हारे सारे निर्णय अपने हैं, नितांत अपने। यही चीज मुझे तुमसे मिलने नहीं देती—जुड़ने नहीं देती।'

और वह चिल्लाकर कहना चाहता था—'मैं अशांत हूं एकदम···· नहीं ठीक हो सका कुछ····' और उसे बांहों में दबोच ऐसे जकड़ लेना चाहता था कि वह ज़रा-सी भी अलग न हो सके।

पर अनिता दरवाज़े के पास तक चली गयी थी। तेज़ी से यह कहते हुए—"अब चलो न····क्या हुआ?"

पर वह जानता है, खूब जानता है कि अनिता और भी दूर हो चुकी है।····वह यूंही आसपास देखने लगा—"कुछ नहीं····" मन की सारी बातें समझा नहीं सकता था और लगने भी लगा था कि कहने के लिए हर शब्द अधूरा-सा है—टूटा-सा है।

उसने फ्लावर-पॉट में सजाये फूलों की ओर देखा और कुछ पल उसी ओर देखता रहा। फिर थकी हुई आवाज़ में बोला था, "अनु, मैं फूल भी गलत ले आया न। ये महकते नहीं।"

अनिता के होंठ कंपकंपाये थे और आंखों में गीली चमक भर

वह उसके बिलकुल क़रीब आ गया। उसे अपनी बांह के घेरे में लेता हुआ बोला—"यह वहां चले जाने का प्रोग्राम सचमुच पसंद है तुम्हें ?"

"वह तो क्या कहूं...पर इतना ज़रूर जानती हूं कि बेहद ज़रूरी है। एकदम अकेली पड़ गयी हूं। जगह बदलनी ही होगी। जाना ही होगा।"

"पर मैं तुम्हें इस तरह नहीं जाने दूंगा।"

"पर मुझे रोकने के लिए तुम कर ही क्या सकते हो ?"

"क्या कर सकता हूं !...." उसने अनिता को अपनी बांहों में एकदम सिमेट लिया था।

और उसे लगा था कि अनिता की तरफ से कोई अस्वीकृति नहीं। उसने अपने होंठ उसके होंठों पर कस दिये।—पर कुछ पल बाद ही अनिता ने छटपटाकर अपना मुख उसके कंधे पर रख दिया था।

"अनु !...." वह उसकी गरदन की नरमाई को बेतहाशा चूमते हुए बोला था—"....तुम नहीं जा सकतीं। मैं आने वाले दिनों को अच्छी तरह देख रहा हूं....अब ज्यादा देर नहीं। सी० के० का अपना आदमी बन गया हूं न ! अब वह हमेशा ही मुझे काम देगा। और एक साल के अंदर ही क्या से क्या बन जाऊंगा।"

"तुमने तो कहा था कि सिर्फ एक बार ही उसका साथ दिया है। फिर नहीं दूंगा।" अपने को उसकी जकड़ से छुड़ाने का प्रयत्न-सा करती वह बोली।

"हां, वह तो है। इस काम में नहीं दूंगा। पर मैं तो उसके यहां सिर्फ ढंग का काम कर रुपया पाने की बात कह रहा था—वह एक सीढ़ी है आगे बढ़ने की।"

उसने अपनी बांहों का घेरा हटा लिया था। पर उसके हाथ अभी भी थामे हुए थे।

"तो इसका मतलब तुम खूब फायदा उठा लेने की बात सोच कई दिन तक उसके अपने आदमी बने रहोगे। तब तुम्हारे सोचने का ढंग

भी क्यों वैसा नहीं हो जायेगा ?"

"कोशिश करूंगा ऐसा न हो।"

"कोशिश से ही कुछ होता है क्या ?...हिम्मत है तो अभी यह कांट्रैक्ट ही फाड़ दो न।"

"पर रुपया लिया हुआ है।"

"रुपये की कोई रसीद तो नहीं दी न...इन लोगों से ईमानदारी बरतना तुम्हें बहुत याद रह रहा है ?" एक व्यंगीली उपेक्षा-सहित वह छिटककर अलग हो गयी थी।

"पर मुझे कॉम्पनसेट भी तो करना है। परिवार का मामला है। मैं जल्दी से जल्दी पत्नी को सारे कम्फर्ट्स दे देना चाहता हूं।"

"क्यों ?"

"मुक्त होने का यह तरीका आसान और जल्दी का है।"

"छिः ! तुम जिसे इतना चाहते हो उसके बारे में ही इतने कैल-क्युलेटिंग ढंग से सोचते हो।"

"इसमें कसूर मेरा नहीं।"

अनिता ने फिर उदासीन दृष्टि से उसकी तरफ देखा था और एक गुस्से-भरी थकान में पलंग पर धम से बैठ गयी थी।

वह व्यग्र उत्तेजना लिये उसके पास आते हुए बोला था, "यह सब जाने दो..." और वह तीव्रता से उस पर झुक आया था—"पर सुनो, मैं तुमसे अलग नहीं हो सकता...नहीं ऽऽ...सुनो ऽऽ" जाने क्या हुआ था कि भावनाओं से भरती इन आवाज़ों का जवाब देने से वह स्वयं को नहीं रोक पायी थी। वह उससे बेसाख्ता बड़े जोर से लिपट गयी थी—जैसे वह उसे बांहों में नहीं ले रहा बल्कि वही उसे आलिंगनबद्ध कर रही है।

उसकी बांहें उसे ऐसे जकड़ रही हैं जैसे इसी एक पल में सारी अभिन्नता को पा लेना चाहती हों। वह दुगुने आवेग से उसकी आकांक्षा का उत्तर देना ही चाहता था कि वह उसकी छाती पर रखे अपने हाथ से उसे परे हटाते हुए कह रही थी—"ओफ, [illegible]। एकदम बेहूदा।...यह हो नहीं सकता।"

"तुम समझती क्या हो खुद को···!" और जो उंगलियां बड़े प्यार से अनु के वालों में उलझी थीं वह यकायक सख्त हो गयी थीं···और एक निर्मम गुस्से से वह हाथ उन वालों को झटक भी गया था। जिसके खिचाव के दर्द से उस माथे पर एक शिकन खिची कि मिट भी गयी इन शब्दों सहित—"समझना क्या है—पर हम हल्के स्तर पर यह खेल चला रहे होते, तो अलग वात थी। पर तुम्हें मालूम है न, ऐसी वात नहीं! ···तो मुझे अच्छा नहीं लगता कि तुम हिसाव-किताव लगाते उस दिन का इंतज़ार करते रहो जव कह सको कि तुम्हें सिर्फ़ मेरे पास रहना है।"

"तो तुम चाहती हो मैं अपना वना-वनाया घरवार एक झटके में ही तोड़ दूं।"—उसका कमर को अव भी पूरी जकड़न-सहित उसने वांह के घेरे में लिया हुआ था। पर रुद्ध वाक्य स्वयं ही उसके स्पर्श को और भी कड़ा-सा वना गया था।

"ओफ, क्या कह रहे हो! ···मेरा यह मतलव थोड़े ही था। मैं तो झूठेपन से चिढ़ती हूं जिसे मेरी वला से तुम कभी न तोड़ो।"

"अच्छा, यह वात है! ···वोलो···वोलो तुम्हें मेरी ज़रूरत है या नहीं? ···आखिर किसी आधार पर ही सांसों में ताज़गी ज़िदा रखी जा सकती है न! तुम वोलो···खुद को महसूस करने के लिए तुम्हें मेरी जरूरत है या नहीं?"···और उसे लगा, उसकी वांहों में घिरी वह पूरी देह कंप-कंपा-सी गयी थी।

"···वह है। लेकिन···"

"ओह, फिर वही लेकिन। हां-हां, कहो न कि मुझे अपने से कहीं कमतर मानती हो इसीलिए···"

फिर एक अचानक ढंग से उन उंगलियों ने उसके होंठ काट दिये थे—"तुम समझती क्या हो खुद को! मेरी पत्नी तुमसे कहीं ज्यादा खूबसूरत है।"

"मालूम है।" इतना ठंडा उत्तर दे आंखें वंद किये—जाने वह क्या सोचने लगी थी।

वह इस निरपेक्षता से चिढ़ उठा···"यू स्टुपिड, रोओगी वैठकर एक दिन। अपने वनाये विचारों की वजह से। जिन्हें न वदलने की तुमने

"यह बात नहीं''''" उसके माथे पर पसीना चमक आया था।

"ओ'''बात-बात सब मालूम है। तुम समझती हो मैं बड़ा घटिया इंसान हूं। तुम इंसान की कमजोरियों को हैवानियत मानती हो।"

"झू ऽ ठ'''हैवानी और मानवी कमजोरियों में फर्क है। पर उस थोड़े से फर्क की पहचान कभी-कभी हाथ से फिसल जाती है।"

"ओ ऽ सब जानता हूं।'''हां-हां, करो इंसान से ऊपर उठने की कोशिश और एक दिन पाना भयानक खालीपन''''" वह अपने हाथ में उलझे उस हाथ को जोर से झटक रहा था—"तु ऽ म''''! क्या कहूं, तुम्हारे विचारों जैसी चीजें मर चुकी हैं उनकी कोई कीमत नहीं''''" फिर वह झटके से उठ खड़ा हुआ था और आतंकित-दृष्टि लिये बैठी—कुछ पलों को पत्थर-सी बन गयी—उस आकृति पर तमाम उपेक्षा फेंकते हुए बोला था—"तुम कट जाओगी दुनिया से अलग हो जाओगी। कोई तुम पर थूकने भी नहीं आयेगा फिर'''।" वह कहते-कहते रुक गया।

देख रहा था एक विडंबित मुस्कान उन होंठों का एकमात्र स्पंदन बन रही थी—पर उसे यही लग रहा था कि वह आज अपने व्यर्थ पड़ने का तमाशा देख कैसी पराजित और विचलित हुई जा रही है। उसके मन में बड़े जोर का अट्टहास आंदोलित हो उठा। किसी जीत की क्रूरता का स्वाद उसके गले में भरभराता चला गया''''"गुड लक माई डीयर! मैं चलता हूं।" और वह भड़भड़ाती तेजी से दरवाजे से बाहर निकल गया था।

•
•

उसे नहीं मालूम अनिता ने क्या सोचा। उसने नहीं सोचा कि अनिता की दृष्टि ने क्या समझा! और उसकी अपनी दृष्टि ने भी अपनी किसी बात को नहीं जांचा। बस, वह कहां-कहां नहीं घूमता रहा उस रात।

वह किसी घर में नहीं जाना चाह रहा था। उसने ससुराल में भी फोन कर दिया कि काम की वजह से नहीं आ पायेगा।—क्योंकि वह

अपनी हर सांस में यह वात महसूस कर रहा था कि वह हर चीज़ से तंग आया, सताया हुआ-सा जीव है।....एक जगह से उठ ही आया है। दूसरी जगह जाने का भी कोई आकर्षण नहीं। अजव-सी घृणा के उगलाव को सिमेटना-भर ही वचा है।

वह कितनी-कितनी जगह घूमता रहा। स्वयं के ऊपर उठने की वात, महसूस करने की जवरदस्त मांग, सिर पर प्रहार-सा करती रही—और वह वढ़िया होटलों में घूमता रहा।

समुद्र-किनारे के उस फाइव स्टार होटल की वार वंद होने का वक्त भी हो गया तो देखा घड़ी में कि रात के दो वजने वाले हैं। पर नशा उस पर नहीं चढ़ा था। क्योंकि वह इस जगह भी एक अधूरा पिया गिलास हाथ में रखे, वातावरण के ज़रिये खुद को ऊपर उठाकर, जीवंत होने का एहसास स्वयं को दिलाने की कोशिशें करता रहा था।

इस जगह के साथी उस मस्त मलंग आदमी राजनंद ने पीठ पर धौल जमाया था, "उठ दोस्त, अव तो जाना ही होगा।" राजनंद काफी लड़खड़ा रहा था पर फिर भी विलकुल अनियंत्रित नहीं था। वाहर आकर वड़े इतमीनान से ही कह रहा था, "मैं तो इस वक्त इतनी दूर घर नहीं जा सकता। तुम....!"

"जा सकता हूं पर घर जाने मूड अव भी नहीं।"

"तो आओ। एक शैंक उस सस्ते होटल में ले लें। अपनी पहचान की जगह है। जव जाओ देता है।"

शैंक लेने के वाद भी वह वाहरवाले वरामदे में ही पड़ा रहा। जहां से समुद्र दिखाई नहीं देता था सिर्फ़ उसका शोर सुनायी देता था।

"वाहर ही सोओगे?" थोड़ी देर के लिए राजनंद भी एक सिगरेट वाहर फूंक लेने की धुन में वहीं पास आ वैठा था।

"हां, वाहर ही—वुरी तरह दम घुट-सा रहा है।....सुनो, वड़ी अजीव-सी वात याद आ रही है।"

"अरे, अजीव वातों को मारो गोली। उन्हें गोली मारने में ही आराम है। मैं तो वड़ी अच्छी-अच्छी वात सोच रहा हूं। उन दिनों को याद कर रहा हूं जव अपनी विलव्ड को इस होटल में हर शनिवार को

लाया करता था और हम इतवार की सुबह वापस जाते थे।"

वह इस पर कोई प्रतिक्रिया दिखाये बिना चुप रहा। फिर यकायक बोला था, "सुनो न, तुमने एक बार कहा था न कि जगह-जगह चूहे-दानियां फैली हैं। पता नहीं हम कब कहां फंस जायें।"

"अरे, छोड़ो न यार—कोई और बात करो।"

"....पर मुझमें ऐसी घुटन है कि लग रहा है आखिर मैं भी चूहे-दानी में फंस गया हूं।"

"धत्...."

"हां, और बड़ी मुसीबत है इस तरह महसूस करने में कि एक जानकारी हो गयी है। पहले की खुशफहमी टूट गयी है कि ज़िंदगी के सांचे खुद तैयार किये जा सकते हैं....पर अब पता चल गया है कि कितनी चालाकियां, कितनी चोटें, कितने दबाव घेरकर हमें भी जड़ नमूने का एक हिस्सा बना देते हैं...और ये सारी ताकतें बड़ी भयानक हैं—बड़ी भयानक!"

वह धीमी मरियल आवाज में लेकिन चीखने के ढंग से कह रहा था—"देखो....मेरी आंखों के सामने बहुत-से दफ्तर हैं....सरकारी, गैर-सरकारी....कितने कारखाने हैं—कितनी मिलें हैं, कितनी दुकानें हैं....! लगता है कहीं भी चला जाऊं पर चूहेदानियों से उठती रोटियों की गंध तो क्या उनकी सड़ी बदबू तक भी मुझे जकड़ लेगी।"

"छोड़ यार, लगता है आज दो-तीन में ही आउट हो गया है।"

"नहीं-नहीं, यह बात नहीं। सुनो यह जो समुद्र की आवाज़ है न... इसी शोर के बीच कितनी चीज़ें बाहर से आ रही हैं और कितनी जा रही हैं। चीज़ों को लाने-निकालने वाले कितने हैं!—मालूम नहीं इस वक्त भी कौन पकड़ा जा रहा है और कौन नहीं!....पर देखो कैसी अजीब बात। सब हरे-भरे पत्तों वाले पेड़ों के नीचे एक दौड़ के नशे में चूर हैं। यह भी नहीं सोचते कि खुद ही उनकी जड़ें काट रहे हैं।"

"ओफ-ओ, तुम होश में नहीं।"

"नहीं, मुझे लग रहा है इतने होश में कभी न था।"

"तो फिर इसका मतलब मैं ही बेहोश होऊंगा।" फिर वह लड़

खड़ाते कदमों से शैक के अंदर चला गया था—'ओ० के० गुडनाइट' कहते हुए।

और उसे याद आ गया था 'गुड लक' कहना—वह आज शाम किसी से यही कहकर तो अलग हो गया था। किसी चट्टान को हिला दिया उसने—हां, बता दिया कि ढहती हुई चीजों का गुमान नहीं करना चाहिए।···पर क्या चट्टान को हिलाने में विस्फोट नहीं होता? होता है। होता ही है।—और भयंकर तपिश-सी उसके दिमाग में जल उठी।··· वह उठा और फड़फड़ाते पत्तों वाले लंबे पेड़ों के नीचे जाने कितनी देर इधर-से-उधर चलता रहा। पास के तट से उठ रहा हाईटाइड का उछलता शोर और भी बेचैन कर रहा था। इस शोर से उपजी कोई थकावट पोर-पोर दुखा गयी थी। वह कब तख्त पर आ लेटा और कब सोया, पता नहीं।

पर फिर आंख खुली तो अंधेरा उस वक्त तक भी पूरी तरह नहीं हटा था। बस, अंधेरे वाले आकाश में एक नीलाहट घुल रही थी।—ठंडी हवाओं से मिली झुरझुरी से बदन सुन्न-सा पड़ गया था। वह उठ कर अंदर जाने की सोचने लगा। पर फिर जाने क्या हुआ कि सीधा ही वहां के ऑफिस वाले शैक की तरफ चल पड़ा था।···शायद वहीं कहीं पब्लिक फोन का बूथ होना चाहिए।

खामोश जगह की हवाओं की सनसनाहट कलेजे को चीर-सा रही थी। ऊंचे-ऊंचे नारियल के पेड़ों के तने अपने चारों ओर डोलते-से महसूस हो रहे थे।···आफिस के बरामदे में चाय का मग हाथ में लिये, चादर लपेटे, उकड़ूं बैठे चौकीदार-से दीखते एक व्यक्ति ने बताया था कि फाटक के पास पब्लिक फोन लगा है। यहां नहीं।

वह वहां पहुंच एक पल को ठिठका फिर सर्द पड़ी उंगली से नंबर घुमा रहा था। कितने क्षण उधर बज रही घंटी की आवाज़ सुनता रहा। बहुत देर बाद आवाज़ आयी—'हेलो'—तो उसे ध्यान आया कि रेजगारी तो निकाली ही नहीं। वह जेब टटोलता रहा और मनाता रहा कि 'हेलो' वाली आवाज़ छूटे नहीं। लेकिन प्रतीक्षारत वह आवाज़ झल्ला गयी थी और कनेक्शन कट हो ही गया था।

फिर वह रेज़गारी पर्स में तलाशने लगा था—'ओह थैंक हैवन्स, दस-दस पैसे के तीन सिक्के मिल ही गये थे। उसने तट की ओर उड़ चले ऊपर से गुज़रते सफेद-सफेद परिंदों की ओर मुस्कराकर देखा।

पर नंबर घुमाते हुए सारी वीरानियत में गूंजती कहीं पास से ही उठती ताज़ा-ताज़ा जगे पक्षी की 'ऊंहू ऽ ऽ क' सी पुकार बड़ी मनहूस लगी थी।

वह रिसीवर से खुद तक पहुंचने वाली आवाज़ के इंतज़ार में एक-एक पल गिनता बेसब्री से जूते की नोक ज़मीन की जमी मिट्टी पर घसीटता रहा था। और हाथ का सुन्नपन दिल पर भी जमने लगा था कि आवाज़ आयी—'हलो।'

"आई वांट अनिता।" सिक्के डालने के बाद उसने लपककर कहा था।

"क्या कहा ?"

"इट्स रीयली वेरी अर्जेंट। आई वांट अनिता, प्लीज़।"

"आई एम हर लैंड-लेडी। तुम कौन हो ?"

"मैं···मैं वही जो कल शाम आपसे भी मिला था।"

"ओह···अम् !" लैंड-लेडी ने अब बड़ी खुशी से अभिवादन किया था। लेकिन अगले ही पल ज़रा अफसोस-भरा लहजा सुनायी दे गया—"पर अनिता तो नहीं है।"

"नहीं है ?"

"नहीं···आपको मालूम नहीं। वह मिडनाइट ट्रेन से चली गयी।"

"यह कैसे हो सकता है।"

"यह तो मुझे नहीं मालूम। पर वह अपना सामान उठा ले गयी है और पेमेंट पूरी कर गयी है।

"ओह ! पर···पर कुछ तो पता होगा।"

"कहा न, वह चली गयी।"

"आप झूठ बोल रही हैं।"

"मुझे ऐसी बातें सुनने की आदत नहीं···जो कहा है वह सच है, मन···"

और एक क्लिक की आवाज़—कनेक्शन कट और हाथ में थमा रह गया है ठंडा-सा वेजान रिसीवर।

अव ? अव क्या !—वह कुछ पल यूं ही फाटक को घूरता रहा। अव क्या ही पहुंच पायेगा उस तक ?···फिर अव ! वह स्वयंचालित-सा अपने शौक की तरफ लौट चला। कहीं कोई आवाज नहीं। इस कदर खामोशी कि अपने ही कदमों की ठक्-ठक् अजनवी लग रही थी। ···अपनी सांसें तक अजनवी लग रही थीं। पर विचारों की आवाज़ें इस निर्जनता में भी शोर मचा रही थीं।···नहीं-नहीं, एक निर्जन शून्य में नहीं पड़ा रहना चाहता।—नहीं, वह अपना कांट्रेक्ट फाड़ने की स्थिति में नहीं है—नहीं फाड़ेगा।

और वरामदे में पहुंच वह धड़ाम से तख्त पर गिर पड़ा था। उसकी सांस फूल रही थी। शरीर को किसी भयंकर ठंड ने जकड़ लिया था कि लगता था अव उठ ही नहीं पायेगा। पर जकड़न ठंड की है या किसी चूहेदानी में कद होने की जकड़न है।—पर जो भी है, ऐंठन इतनी है कि लग रहा है धड़ अंदर है और दिमाग वाहर। हां, यही मुश्किल है कि वह फंस गया है पर पूरी तरह भी नहीं। धड़ अंदर ज़रूर है पर दिमाग वाहर है। दिमाग !—वही दिमाग जो निरंतर सोचने पर मजवूर करता रहेगा।···वहुत याद दिलाता रहेगा।